इस्लाम-धर्म की रूपरेखा

लेखक

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

समर्पण

मेरे

अरबी के गुरु

तथा आरम्भिक पथ-प्रदर्शक

श्री महेश प्रसाद मौलवी

आलिम-फ़ाज़िल के

कर-कमलों

में

निवेदन

बहुत दिनों से इच्छा थी कि, हिन्दुओं—विशेषकर पंडित-समुदाय को 'इस्लाम' धर्म का परिचय कराने के लिये एक पुस्तक लिखूँ। संयोग से ऐसा अवसर भी सन् १६२२ ई० की जेलयात्रा में हाथ लगा। संस्कृतज्ञ-पंडित समुदाय एक तो हिन्दी भाषा की ओर रुचि ही कम रखता है, दूसरे वैसा करने से प्रचार भी अधिक दूर तक होगा; इन्हीं विचारों से ग्रन्थ को संस्कृत में लिखना आरम्भ किया। थोड़ा लिखने के बाद मैंने उसे अपने सहयोगी नारायण बाबू को उल्था करके सुनाया। इस पर उनकी राय हुई कि ग्रन्थ हिन्दी में भी लिखा जाना चाहिये। तब से 'इस्लाम-धर्म की रूपरेखा' का कुछ भाग हिन्दी में भी लिखा गया। बाहर निकलने पर कई महानुभावों ने छपाने की प्रेरणा की, किन्तु मैं मजबूर था, क्योंकि ग्रन्थ अभी साफ़ लिखा नहीं गया था, तथा बाहर के अन्य कामों के आधिक्य से उसके लिये अवसर भी मिलना कठिन था। सौभाग्य से एक बार फिर ऐसा अवसर हाथ लगा, और मैंने इस काम को समाप्त करने में बहुत जल्दी से काम लिया। देखें, अभी संस्कृत 'इस्लाम-धर्म की रूपरेखा' को कब उसके पाठकों के हाथ में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है, किन्तु हिंदी 'इस्लाम-धर्म की रूपरेखा' तो प्रथम ही उसका पात्र हो रहा है।

हिन्दू-धर्म में जैसे अनेक सम्प्रदाय तथा उनके सिद्धान्तों में परस्पर भेद है, वैसे ही 'इस्लाम' की भी अवस्था है। इन कठिनाइयों से बचने के लिये मैंने 'कुरान' के मूल को उसके शब्दों में केवल भाषा के परिवर्तन के साथ 'इस्लाम' धर्म को रखने का प्रयत्न किया है। बहुत कम जगह आशय स्पष्ट करने के लिये कुछ और भी लिखा गया है।

ग्रन्थ लिखने का प्रयोजन, हिन्दुओं को अपने पड़ोसी मुसल्मान भाइयों के धर्म से जानकारी कराना है। जिसके बिना दोनों ही जातियों में एक दूसरे के विषय में अनेक भ्रम, आये दिन उत्पन्न हो जाया करते हैं। यदि उक्त अभिप्राय का कुछ भी अंश इससे पूर्ण हो सका, तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।

बक्सर जेल
मई १९२३ ई०

विनीत—

रा० सां०*

---

*पुस्तक १९ वर्ष पूर्व लिखी गई थी, तो भी पुस्तक को उसी रूप में रहने दिया गया है।—राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

प्रथम विन्दु

द्वितीय विन्दु

तृतीय विन्दु

चतुर्थ विन्दु

पञ्चम विन्दु

षष्ठ विन्दु

सप्तम विन्दु

अष्टम विन्दु

नवम विन्दु

दशम विन्दु

एकादश विन्दु

प्रथम विन्दु

अरब और महात्मा मुहम्मद

एशिया खण्ड के दक्षिण-पश्चिमाञ्चल में, फ़ारस की खाड़ी, भारतीय समुद्र, रक्तसागर, 'हलब' प्रदेश और फुरात आदि नदियों से घिरा अरब देश है। ६,००० मील लम्बे और २,२४० मील चौड़े, बालुकामय इस पहाड़ी देश की तुलना कुछ-कुछ हमारे यहाँ के मारवाड़ और बीकानेर से हो सकती है। बहुत दिनों से अरब-निवासी 'बद्दू', बकरी-ऊँट चराते, एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते-फिरते हैं। 'शाम' की भाषा में मरुभूमि को 'अरबत्' कहते हैं, इसी से 'अरब' शब्द निकला है। यहाँ का उच्चतम पर्वत 'सिरात' 'यमन' प्रदेश से 'शाम' तक फैला हुआ है; जिसकी सबसे ऊँची चोटी ५,३३३ हाथ ऊँची है। बीच-बीच में कहीं-कहीं, विशेषकर 'शाम' प्रदेश में खेती के उपयुक्त उर्वरा भूमि भी है। जहाँ-तहाँ सोने-चाँदी की खानें भी पाई जाती हैं।

प्राचीन अरब

अत्यन्त प्राचीन काल में 'जदीस', 'आद', 'समूद' आदि जातियाँ—जिनका अब नाममात्र शेष है—अरब में निवास करती

थीं। किन्तु भारत-सम्राट् हर्षवर्द्धन के सम-सामयिक हज़रत मुहम्मद के समय 'क़हतान', 'इस्माईल' और 'यहूदी' वंश के लोग ही अरब में निवास करते थे। प्राचीन अरब की सभ्यता के विषय में जर्मन विद्वान् 'नवेल्दकी' लिखता है—

'ईसा से एक हज़ार वर्ष पूर्व अरब के आग्नेय कोण की सभ्यता चरम सीमा को पहुँची हुई थी। गर्मियों में वर्षा के हो जाने से 'सबा' और 'हमीर' का यह 'यमन' देश बड़ा हरा-भरा रहता था। यहाँ की प्रशस्तियाँ और भव्य प्रासादों के ध्वंसावशेष आज भी, हमें बलात् प्रशंसा के लिये प्रेरित करते हैं। 'समृद्ध-अरब' यह यवनों और रोमकों (इटलीवालों) का कहना यहाँ के लिये बिल्कुल उपयुक्त था। 'सबा' की गौरवसूचक अनेक कथाएँ 'बाइ-बिल' ग्रन्थ में पाई जाती हैं, जिनमें 'सबा' की महारानी और सुलेमान की मुलाकात विशेषतः स्मरणीय है। 'सबा' वालों ने उत्तर में अरब के 'दमश्क' प्रान्त से लेकर 'अबीसीनिया, (अफ्रीका में) पर्यन्त, आरम्भ ही में लेखन कला का प्रचार किया था।'

फारेष्टर महाशय ने अपने भूगोल में शाम के पड़ोसी प्राचीन 'नाबत' राज्य के विषय में लिखा है—

यूटिङ्_महाशय ही का यह प्रयत्न है, कि प्राचीन ध्वंसावशिष्ट सामग्रियों द्वारा, चिर लुप्त समूद जाति का परिचय हमको मिल सका। आरम्भ में इसके ही द्वारा शिक्षित 'नाबत' जाति भी इसके सदृश ही थी, जिसकी कीर्ति अरब की मरुभूमि को उल्लं-घनकर 'हिजाज़' और 'नज्द' तक फैली हुई थी। वाणिज्य, व्यवसाय द्वारा धनार्जन में कुशल यह लोग, इस्माईल-वंश के अनुरूप युद्ध-भय से भी निर्भय थे। इनके फिलस्तीन तथा 'शाम' पर आक्रमण, और अरब समुद्र में अनेक बार मिश्र के जहाज़ों पर डाका डालने ने, यूनान के राजाओं को भी इनकी शत्रुता के लिये प्रेरित किया था। किन्तु 'रोम' की सम्मिलित शक्ति के

अतिरिक्त, कोई भी इनको परास्त करने में समर्थ न हुआ। 'अब्राबू' के समय अशक्त होकर इन्होंने रोम की सन्दिग्ध अधीनता स्वीकार की थी।

'श्याचर' महाशय 'आङ्ल-विश्वकोष' में लिखते हैं—

'ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व, दक्षिण ओर कोई उच्चतम सभ्यता थी। आज भी वहाँ, नगर-प्राकार का ध्वंस बाक़ी है; जिसका वर्णन बहुत से यात्रियों ने किया है...............। यमन और हज्रमौत में ऐसे ध्वंसावशेषों का बाहुल्य है। वहाँ कहीं-कहीं प्रशस्तियाँ भी प्राप्त होती हैं।... ...

कद्जानी ने 'नगर-ध्वंसावशेष' पुस्तक में 'सनआ' के समीपवर्ती दुर्ग को सप्त आश्चर्यों में गिना है।.......

'प्राचीन सबा की राजधानी यारब नगरी के ध्वंस को अर्नो, हाल्वे और ग्लाओ महाशयों ने देखा है। वहाँ की अवशिष्ट बड़ी खाईं के चिह्न, जीर्णोद्धार किये गये अदन के कुंडों का स्मरण दिलाते हैं। 'ग्लाओ' प्रकाशित दो दीर्घ प्रशस्तियों से उनका पुनरुद्धार, ईसा के पञ्चम और षष्ठ शतक में किया गया प्रतीत होता है।'

'यमन प्रान्त के 'हरान' नामक स्थान में ३० हाथ लम्बी खाईं मिली है।'

मुहम्मद-कालीन अरब

प्राचीन काल में अरब-निवासी सुसभ्य और शिल्प-कला में प्रवीण थे, यह ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है। परन्तु 'नीचैर्गच्छत्युपरि च तथा चक्रनेमिक्रमेण' के अनुसार कालान्तर में उनके वंशज, घोर अविद्यान्धकार में निमग्न हो गये और सारी शिल्प-कलाओं को भूलकर ऊँट-बकरी चराना मात्र उनकी जीविका का उपाय रह गया। वह इसके लिये, एक स्रोत से

दूसरे स्रोत, एक स्थान से दूसरे स्थान में, हरे चरागाहों को खोजते हुए, खेमों में निवास करके कालक्षेप करने लगे। कनखजूरा, गोह, गिर्गिट आदि सारे जीव उनके भक्ष्य थे। नर-बलि, व्यभिचार, द्यूत और मद्यपान आदि का, उनमें बड़ा प्रचार था इस्लाम के पूर्व पिता की अनगिनत स्त्रियाँ दाय भाग के तौर पर पुत्रों में बाँट दी जाती थीं, जिन्हें वह अपनी स्त्री बना लेते थे। राजपुत्र 'अम्रुल्कैस' कवि के अपने और अपने फूआ की कन्या-सम्बन्धी दुर्वृत्तपूर्ण काव्य को भी बड़ी प्रसन्नता से लोगों ने 'काबा' के पवित्र-मन्दिर में स्थान दिया था। प्राचीन राज्यों के विध्वंस हो जाने पर परस्पर लड़ने-भिड़ने वाले, क्षुद्र परिवार-सामन्तों का, स्थान-स्थान पर अधिकार था। एक भी आदमी का हत होना, उस समय उभय परिवार के लिये चिरकाल पर्यन्त कलह का पर्याप्त बीज हो जाता था। उस द्वेषाग्नि को माता के दूध के साथ, लड़कों के हृदयों में प्रविष्ट करा दिया जाता था। युद्ध के क़ैदियों के साथ, उनके स्त्री और बच्चों का भी शिरच्छेद, उस समय की प्रथा में अतिसाधारण था। निद्रितों पर आक्रमण कर लूटने और मारने में कुशल लोग 'फ़ातक़' और 'फ़त्ताक़' शब्दों से अभिपूजित होते थे। प्रज्वलित अग्नि में, जीवित मनुष्य का डाल देना उनके समीप कोई असाधु कर्म नहीं समझा जाता था। हिन्दू-पुत्र अम्रू ने, अपने भाई के मारे जाने पर, एक के बदले सौ के मारने की प्रतिज्ञा की। उसने एक दिन अपने प्रतिपक्षी, 'तमीम' वंशियों पर धावा किया, किन्तु लोग बस्ती छोड़कर भाग गये थे। केवल 'हमरा' नाम की एक बुढ़िया वहाँ रह गई थी, जिसे उसने जलती आग में डलवा दिया। उसी समय अभाग्य का मारा 'अमारा' नामक एक क्षुधातुर सवार, दूर से धुआँ उठते देख भोजन की आशा से उधर आ निकला। इन लुटेरों के पूछने पर उसने उत्तर

दिया, कि मैं कई दिन का भूखा हूँ, कुछ खाना मिलने की आशा से आया हूँ। इस पर 'अमरू' ने अपने साथियों को आज्ञा दी कि इसको भी आग में डाल दो।

कोमल शिशुओं को लक्ष्य बनाकर तीर मारना, असह्य पीड़ा देने के लिये एक-एक अङ्ग को थोड़ा-थोड़ा करके काटना, शत्रु के मुर्दों की नाक-कान काट डालना, यहाँ तक कि उनके कलेजे को खा जाना इत्यादि उस समय के अनेक क्रूर कर्म उनकी नृशंसता के परिचायक थे।

मुहम्मद-जन्म

ऐसे अन्धकार के समय, अरब के प्रधान नगर बक्का (मक्का) में, अब्दुलमतलब के पुत्र अब्दुलाह की भार्या 'आमना' के गर्भ से स्वनामधन्य महात्मा मुहम्मद ६१७ विक्रम सम्वत् में उत्पन्न हुए। इनका वंश 'हाशिम' वंश के नाम से प्रसिद्ध था। जब अभी यह गर्भ ही में थे, कि इनके पिता स्वर्गवासी हुए। माता और पितामह का बालक पर असाधारण स्नेह था। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमनेवाले बद्दू लोगों की स्त्रियों को पालने के लिये, अपने बच्चों को दे देना, मक्का के नागरिकों की प्रथा थी। एक समय 'साद' वंश का एक बद्दू स्त्री 'हलीमा' मक्का में आई। उसको कोई और बच्चा नहीं मिला था; जिससे जब धनहीन 'आमना' ने अपने पुत्र को सौंपने को कहा तो, उसने यह समझ कर स्वीकार कर लिया, कि खाली हाथ जाने से जो ही कुछ पल्ले पड़ जाय वही अच्छा। हलीमा ने एक मास के शिशु मुहम्मद को लेकर अपने डेरे को प्रस्थान किया। इस प्रकार

[1] 'उहद' के युद्ध में 'हिन्द' नामक स्त्री ने 'हमज़ा' (म० मुहम्मद के सहायक) के कलेजे को काटकर खाया था।

बालक मुहम्मद ४ वर्ष तक बद्दू-गृह में पलता रहा। पीछे वह फिर अपनी स्नेहमयी माता की गोद में आया। एक समय सती 'आमना' ने कुटुम्बियों से भेंट करने के लिये बालक मुहम्मद के साथ अपने मायके 'मदीना' को प्रस्थान किया। वहाँ से लौटने पर, मार्ग में 'अब्बा' नामक स्थान पर, पितृछाया-विहीन बालक मुहम्मद को, अमृततुल्य मातृ-करस्पर्श से भी वञ्चितकर, देवी 'आमना' ने स्वर्गारोहण किया। बहू और पुत्र के वियोग से खिन्न पितामह 'अब्दुल्मतल्लब' ने, वात्सल्य-पूर्ण हृदय से पौत्र के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लिया। किन्तु भाग्य को यह स्वीकृत न था और मुहम्मद को ८ वर्ष का छोड़कर वह भी काल के गाल मे चले गये। मरते समय उन्होने अपने पुत्र 'अबूतालिब' को बुलाकर करुणस्वर में आदेश दिया कि मातृ-पितृ-विहीन वत्स मुहम्मद को पुत्र-समान जानना।

महात्मा मुहम्मद ने 'अबूतालिब' की प्रेमपूर्ण अभिभावकता में, कभी वन मे ऊँट-बकरी चराते, तथा कभी साथियों के साथ खेलते-कूदते अपने लड़कपन को सानन्द बिताया। जब वह १२ वर्ष के थे और उनके चाचा व्यापार के लिये बाहर जानेवाले थे; तब उन्होंने साथ चलने के लिये बहुत आग्रह किया। चचा ने मार्ग के कष्ट का ख्यालकर इसे स्वीकार न किया। जब चचा ऊँट लेकर घर से निकलने लगे, तो भतीजे ने ऊँट की नकेल पकड़कर रोते हुए कहा—'चचाजी, न मेरे पिता हैं न माँ। मुझे अकेले छोड़कर कहाँ जाते हो। मुझे भी साथ ले चलो।' इस बात से अबूतालिब का चित्त इतना द्रवित हुआ कि, वह अस्वीकार न कर सके, और साथ ही मुहम्मद को भी लेकर 'शाम' की ओर प्रस्थित हुए। इसी यात्रा में बालक ने खीष्ट-तपोधन 'बहेरा' का प्रथम दर्शन पाया।

विवाह

जन-प्रवाद है कि असाधारण प्रतिभाशाली महात्मा मुहम्मद आजीवन अक्षर-ज्ञान से रहित रहे। व्यवहार-चतुरता, ईमानदारी आदि अनेक सद्गुणों के कारण, कुरैश-वंश की एक समृद्धि-शालिनी स्त्री 'खदीजा' ने अपना गुमाश्ता बनाकर, २५ वर्ष की अवस्था में नवयुवक मुहम्मद से 'शाम' जाने की प्रार्थना की। उन्होंने इसे स्वीकारकर, बड़ी योग्यतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया। इसके कुछ दिनों बाद 'खदीजा' ने उनके साथ ब्याह करने की इच्छा प्रकट की। यद्यपि 'खदीजा' की अवस्था ४० वर्ष की थी; उनके दो पति पहिले मर भी चुके थे; किन्तु, उनके अनेक सद्गुणों के कारण महात्मा मुहम्मद ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

तत्कालीन मूर्तियाँ

'हुब्ल', 'लात्', 'मनात्', 'उज्ज़' आदि भिन्न-भिन्न अनेक देव-प्रतिमाएँ, उस समय अरब के प्रत्येक क़बीले में लोगों की इष्ट थीं। बहुत पुराने समय में वहाँ मूर्तिपूजा न थी। 'अमरु' नामक काबा के एक प्रधान पुजारी ने 'शाम' देश में सुना, कि इनकी आराधना से दुष्काल से रक्षा और शत्रु पर विजय प्राप्त होती है। उसीने पहिले-पहिल 'शाम' से लाकर कुछ मूर्तियाँ काबा के मंदिर में स्थापित कीं। देखादेखी इसका प्रचार इतना बढ़ा कि, सारा देश मूर्ति-पूजा-निमग्न हो गया। अकेले 'काबा' मन्दिर में ३६० देवमूर्तियाँ थीं; जिनमें हुब्ल—जो छत पर स्थापित था—कुरैश वंशियों का इष्ट था। 'जय[1] हुब्ल' उनका जातीय घोष था। लोग मानते थे कि यह मूर्तियाँ ईश्वर को प्राप्त कराती हैं, इसी

[1] 'अअ़ल्-हुब्ल'।

लिये वे उन्हें पूजते थे। अरबी में 'इलाह' शब्द देवता और उनकी मूर्तियों के लिये प्रयुक्त होता है; किन्तु 'अल्लाह' शब्द 'इस्लाम' काल से पहिले उस समय भी, एक ही ईश्वर के लिये प्रयुक्त होता था।

श्रीमती 'ख़दीजा' और उनके भाई 'नौफ़ल' मूर्तिपूजा-विरोधी यहूदी धर्म के अनुयायी थे। उनके, और अपनी यात्राओं में अनेक शिष्ट महात्माओं के सत्संग एवं, लोगों के पाखण्ड ने उन्हें मूर्तिपूजा से विगत-श्रद्ध बना दिया। वह ईसाई भिक्षुओं की भाँति बहुधा 'हिरा' की गुफा में एकान्त-सेवन और ईश्वर-प्रणिधान के लिये जाया करते थे। 'इक़्रा बि-इस्मि रब्बिक' (पढ़ अपने प्रभु के नाम के साथ) यह प्रथम क़ुरान वाक्य पहिले वहीं पर, देवदूत 'जिब्राइल' द्वारा; महात्मा मुहम्मद के हृदय में उतारा गया। उस समय देवदूत के भयंकर शरीर को देखकर क्षण भर के लिये वह मूर्छित हो गये थे। जब उन्होंने इस वृत्तान्त को श्रीमती 'ख़दीजा' और 'नौफ़ल' को सुनाया तो, उन्होंने कहा—अवश्य वह देवदूत था, जो इस भगवद्वाक्य को लेकर तुम्हारे पास आया था। इस समय महात्मा मुहम्मद की आयु ४० वर्ष की थी। यहीं से उनकी पैगम्बरी (भगवद्दूतता) का समय प्रारम्भ होता है।

इस्लाम का प्रचार और कष्ट

ईश्वर के दिव्य आदेश को प्राप्तकर उन्होंने मक्का के दाम्भिक पुजारियों और समागत यात्रियों को 'क़ुरान' का उपदेश सुनाना आरम्भ किया। मेला के खास दिनों ('इह्राम' के महीनों) में दूर से आये हुए तीर्थ-यात्रियों के समूह को, छल-पाखण्डयुक्त लोकाचार, और अनेक देवताओं की उपासना का खण्डन करके, वह एक ईश्वर (अल्लाह) की उपासना और शुद्ध तथा सरल धर्म

के अनुष्ठान का उपदेश करते थे। 'क़ुरैशी' लोग, अपने इष्ट, आचार और आमदनी की इस प्रकार निन्दा और उस पर इस प्रकार का कुठाराघात देखकर भी, 'हाशिम' परिवार की चिर-शत्रुता के भय से, उन्हें मारने को हिम्मत न कर सकते थे। किन्तु इस नवीन धर्म के अनुयायी, दास-दासियों को तप्त बालू पर लिटाते, कोड़े मारते तथा बहुत कष्ट देते थे। तो भी धर्म के मतवाले प्राणपन से अपने धर्म को न छोड़ने के लिये तैयार थे। इस अमानुषिक असह्य अत्याचार को दिन पर दिन बढ़ते देखकर अन्त में महात्मा ने, अनुयायियों को 'अफ्रीका' खण्ड के 'हब्श' नामक राज्य में—जहाँ का राजा बड़ा न्यायपरायण था—चले जाने की अनुमति दे दी। जैसे-जैसे मुसल्मानों की संख्या बढ़ती जाती थी, 'क़ुरैश' का द्वेष भी वैसे-वैसे बढ़ता जाता था; किन्तु 'अबूतालिब' के जीवन पर्यन्त खुलकर उपद्रव करने की उनकी हिम्मत न होती थी। जब 'अबूतालिब' का देहान्त हो गया, तो उन्होंने खुले तौर पर विरोध करने पर कमर बाँधी।

मदीना-प्रवास

अब महात्मा मुहम्मद की अवस्था ५३ वर्ष की थी। उनकी स्त्री श्रीमती 'ख़दीजा' का भी देहान्त हो चुका था! एक दिन 'क़ुरैशियों' ने हत्या के अभिप्राय से उनके घर को चारों ओर से घेर लिया; किन्तु, महात्मा को इसका पता पहिले ही मिल चुका था। उन्होंने पूर्व ही वहाँ से 'यस्रिब्' (मदीना) नगर को प्रस्थान कर दिया था। वहाँ के शिष्य-वर्ग ने अति श्रद्धा से गुरु-सुश्रूषा करने की प्रार्थना की थी। पहुँचने पर उन्होंने महात्मा के भोजन, वासगृह आदि का प्रबन्ध कर दिया। जब से उनका निवास 'यस्रिब्' में हुआ' तब से नगर का नाम मदीनतुन्नबी

या नबी का नगर प्रख्यात हुआ। उसी को छोटा करके आजकल केवल 'मदीना' कहते हैं। 'क़ुरान' में तीस खण्ड हैं और वह ११४ 'सूरतों' (अध्यायों) में भी विभक्त हैं[1]। निवास क्रम से प्रत्येक सूरत 'मक्की' या 'मदनी' नाम से पुकारी जाती है। अर्थात् मक्का में उतरी 'सूरतें' मक्की और मदीना में उतरी 'मदनी' कही जाती हैं।

मृत्यु

मदीना में अभी वह अधिक दिन तक शान्तिपूर्वक विश्राम न कर सके थे; कि वहाँ भी क़ुरैश उन्हें कष्ट पहुँचाने लगे। अन्त में आत्म-रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख; क़ुरैश, और उनकी कुमंत्रणा में पड़े हुए 'मदीना'-निवासी यहूदियों के साथ उन्हें अनेक युद्ध करने पड़े; जिनकी समाप्ति, 'मक्का'-विजय और 'काबा' को मूर्तिरहित करने के साथ हुई। जन्म नगरी के विजय करने पर भी मदीना-निवासियों के स्नेहपाश में बद्ध हो, महात्मा ने अपने शेष जीवन को मदीना ही में व्यतीत किया। उनके जीवन ही में सारा अरब एक राष्ट्र और एक धर्म के सूत्र में आबद्ध हो, इस्लाम-धर्म में प्रविष्ट हो गया। ६३ वर्ष की अवस्था में इस प्रकार महात्मा मुहम्मद अपने महान जीवनोद्देश्य को पूर्ण कर, शिष्यजनों को अपने वियोग से दुःख-सागर में मग्न करते मृत्यु को प्राप्त हुए। 'क़ुरान' के भाव समझने में पद-पद पर उस समय की परिस्थिति और घटना अपेक्षित है। उसे स्पष्ट करने के लिये तत्कालीन और प्राचीन अरब की दशा के साथ महात्मा की संक्षिप्त जीवनी भी आवश्यक है, जैसा कि अगले पृष्ठों से पता लगेगा।

---

[1] प्रत्येक अध्याय में अनेक 'रकूअ' और प्रत्येक 'रकूअ' में अनेक 'आयत' होती हैं।

इसलिये यहाँ इसके विषय में कुछ कहना पड़ा। ४० वें वर्ष में 'इक़्रा बि इस्मि रब्बिक' से लेकर मरने से १७ दिन (किसी-किसी के मत से १२ दिन) पूर्व 'रब्बिकल् अक्रम' (प्रभु तू अति महान् है) इस वाक्य के उतरने तक, जो कुछ दिव्योपदेश महात्मा मुहम्मद द्वारा प्रचारित हुआ; उसी का संग्रह क़ुरान के नाम से प्रसिद्ध, मुसल्मानी धर्म का स्वतः प्रमाण ग्रन्थ है।

द्वितीय विन्दु

क़ुरान का प्रयोजन, वर्णन-शैली

'कदाचित् तुमको ज्ञान हो, इसलिये उस (मुहम्मद) पर हमने अरबी क़ुरान उतारा।' (१२ : १ : २)

'मंगल सन्देशप्रद, भयदायक, वह ग्रन्थ-अरबी क़ुरान—परम कृपालु, दयामय की ओर से उतरा है। इसमें उस (प्रभु) का लक्षण वर्णित है, जिसमें कि जातियाँ उसे जानें।' (४१:१ : २-४)

'हे मुहम्मद ! इस प्रकार हमने अरबी क़ुरान तेरे हृदयस्थ किया, कि तू उससे ग्रामों की जननी (मक्का), और उसके आस पास को इकट्ठा होने के दिन (प्रलय) से डरावै।' (४२ : १ : ७)

'हे मुहम्मद ! इस प्रकार हमने उस अरबी हुक्म (क़ुरान) को उतारा। जो कुछ तेरे पास (उस) ज्ञान में से आया, यदि उसे छोड़ तूने उन (लोगों) की इच्छा का अनुसरण किया; तो महाप्रभु की ओर से तेरे लिये सहायक और रक्षक (कोई) नहीं।' (१३ : १५ : ६)

उपरोक्त क़ुरान से उद्धृत इन वाक्यों में 'क़ुरान' यह नाम उसकी भाषा और प्रतिपाद्य विषय बतलाया गया है। क़ुरान क्या है ? ईश्वरप्रदत्त एक अरबी ग्रन्थ। उसके प्रदान का प्रयोजन क्या ? यही कि सन्मार्ग-भ्रष्ट जनों को भय दिखा, और श्रद्धालुओं को उनके पुण्य कार्यों के मंगलमय परिणाम का सन्देश दे, सत्पथ पर आरूढ़ किया जाय। महानुभाव मुहम्मद के समय का 'अरब'

कहाँ तक सन्मार्ग-च्युत हो गया था। उस समय का व्यवहार कहाँ तक दुराचारपूर्ण हो गया था? अज्ञान कहाँ तक अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था? इत्यादि बातों का परिचय कुछ तो प्रथम विन्दु से मिल चुका है, और कुछ का वर्णन आगे भी यथास्थान होगा। उन अज्ञानतमोनिमग्न, सदाचार-संज्ञाहीन, क्रूरकर्मा अरब-निवासियों को सच्चे रास्ते पर ले चलने के दो ही उपाय थे। एक तो यह था कि उनको पापों का दुष्परिणाम समझा-कर उन्हें अच्छे कामों की ओर प्रेरित किया जाय।

कितनी ही बार अनेक प्रलोभन सत्पुरुषों को भी सन्मार्ग-भ्रष्ट करने में सफल होते हैं। सर्वप्रिय बनने की इच्छा बहुधा अमधुर सत्य प्रकाशित करने की आज्ञा नहीं देती। इसीलिये ऊपर संकेत किया गया है, कि लोगों की इच्छा का अनुसरण करनेवाला कभी ईश्वर की रक्षा और सहायता का भाजन नहीं हो सकता। सचमुच संसार में समालोचक और संशोधक का काम बहुत कठिन है। नाना छल-पाखण्डयुक्त संसार के दुष्कृत्यों की यदि निर्भीकतापूर्वक समालोचना की जाती है तो, एक बार जनसमुद्र, अपने निस्सीमाधिकार तथा चिरस्थापित नीति के तरंगों का गत्यवरोध देख, अपनी सम्पूर्ण शक्ति को उसके प्रती-कार में लगाने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। बड़ी-बड़ी तरंगों की तो बात ही अलग है, क्षुद्र बुद्बुद समुदाय भी अभिमत्त हो अपने स्वरूप का बिचार न कर उस समय उसके शिर पर पादप्रहार करने का उद्योग भी आरम्भ कर देता है। किन्तु निश्चल-नीति, सत्यमनस्क, सुधारक—

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥"

इस भर्तृहरि के वाक्यानुसार, अपना सर्वस्व स्वाहा करने के लिये, उस प्रलय-कोलाहलपूर्ण, संक्रुद्ध, जन-सिन्धु की कुछ भी परवा न कर, सुमेरुवत् अपने स्थान पर स्थित रहता है। उसका सदुपदेश अरण्य-रोदन-सा प्रतीत होता है अथवा गम्भीर भेरीनाद के सामने क्षीण वीणास्वर। सहायकों और संरक्षकों के बिना, अकेला; अपने भीषण विरोधियों का सांमुख्य, वह उस निराशा-पूर्ण अन्धनिशा में करता है; जब उसे क्षणमात्र के लिये भी आशारूपी तारों की टिमटिमाहट भी नहीं दीख पड़ती। सुधारक मुहम्मद का जीवन भी ऐसी ही घटनाओं से पूर्ण है।

ऊपर के वाक्यों में क़ुरान का अरबी में उतरना भी आया है। मक्का और उसके आसपास के लिये, तभी .क़ुरान की उपयोगिता है, जब कि वह वहाँ की भाषा में हो। दूसरी जगह कहा भी है—

"यदि हम अरबी से भिन्न भाषा में .क़ुरान बनाते, तो अवश्य (लोग) कहने लगते—'उसके तात्पर्य क्यों नहीं स्पष्ट किये गये। क्या! अरब का आदमी और अरब की भाषा से भिन्न भाषा?' यह विश्वासियों के लिये मार्गदर्शक और स्वास्थ्यप्रद है।" (४१ : ५ : १२)

अनुप्रासबद्ध-वर्णन

युद्धप्रिय अरब के लोगों में उस समय कविता के लिये बड़ा प्रेम था। वहाँ कितने ही ऐसे कवि हुए हैं, जिनकी कविताएँ युद्धाग्नि भड़काने में घी का काम देती थीं। इसके लिये इस विषय के विशेष जिज्ञासुओं को श्रद्धेय महेशप्रसाद साधु विरचित प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ 'अरबी काव्य' पढ़ना चाहिये। सुन्दर भाषा और स्वास्थ्य-लाभ के लिये, मक्का नगर के प्रतिष्ठित घरानोंके दो-दो, तीन तीन वर्ष के बच्चे अस्थिर-वास बद्दू अरबों के डेरो में पलते थे। स्वयं माननीय मुहम्मद का शैशव

भी इसी प्रकार व्यतीत हुआ था। इससे भी उनकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित और सुन्दर थी। क़ुरान 'अथ' से 'इति' तक अनुप्रासबद्ध लिखा गया है। जैसे—

'कुल् हुवल्लाहु अहद् । अल्लाहुस्समद् ।
लम् यलिद् व लम् यूलद् । व लम् यकुन् कुफुवन् अहद् ।

[कह, वह परमेश्वर एक, सर्वाधार (है)। (वह) न उत्पन्न करता न उत्पन्न हुआ है। और न कोई उसके समान (है)।] (११२)

लौहमहफ़ूज़ में क़ुरान

क़ुरान के विषय में उसके अनुयायियों का विश्वास है और स्वयं क़ुरान में लिखा भी है—'सचमुच पूज्यक़ुरान अदृष्ट पुस्तक में (वर्तमान) है। जब तक शुद्ध न हो, उसे मत छुओ। वह लोक-परलोक के स्वामी के पास से उतरा है' (५६ : ३ : ३-५) अदृष्ट पुस्तक से यहाँ अभिप्राय उस स्वर्गीय लेख-पट्टिका से है, जिसे इस्लामी परिभाषा में 'लौह-महफ़ूज़' कहते हैं। सृष्टिकर्त्ता ने आदि से उसमें त्रिकालवृत्त लिख रक्खा है; जैसा कि स्थानान्तर में कहा है—

'हमने अरबी क़ुरान रचा, कि तुमको ज्ञान हो। निस्सन्देह वह उत्तम, ज्ञानभण्डार हमारे पास पुस्तकों की माता (लौह महफ़ूज़) में लिखा है।' (४३ : १ : ३, ४)

जगदीश्वर ने क़ुरान में वर्णित ज्ञान को जगत् के हित के लिये अपने प्रेरित मुहम्मद के हृदय में प्रकाशित किया, यही इस सब का भावार्थ है। अपने धर्म की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थ पर असाधारण श्रद्धा होना मनुष्य का स्वभाव है। यही कारण है, कि क़ुरान के माहात्म्य के विषय में अनेक कथाएँ जनसमुदाय में

प्रचलित हैं; यद्यपि उन सब का आधार श्रद्धा छोड़कर क़ुरान में ढूँढ़ना युक्त नहीं है। किन्तु ऐसे वाक्यों का उसमें सर्वथा अभाव है, यह भी नहीं कहा जा सकता। एक स्थल पर कहा है—

"यदि हम इस .क़ुरान को किसी पर्वत (वा पर्वत-सदृश कठोर हृदय) पर उतारते, तो अवश्य तू उसे परमेश्वर के भय से दबा और फटा देखता। इन दृष्टान्तों को मनुष्यों के लिये हम वर्णित करते हैं, जिससे कि वह सोचें।' (५६ : ३ : ४)

क्रमशः उतरना

मुसल्मानी विचार के अनुसार भी, सम्पूर्ण क़ुरान, महानुभाव मुहम्मद को एक ही बार हृदयस्थ नहीं हुआ। क़ुरान में भी आया है—

'जब तक कि उस (क़ुरान) का उतरना पूरा न हो जाय, उसकी प्राप्ति में शीघ्रता न कर।' (२० : ६ : १०)

सर्वप्रथम 'हिरा की गुफा में 'इक़्रा बि इस्मि रब्बिक (अपने ईश्वर के नाम से पढ़) यह वाक्य महात्मा मुहम्मद के हृदय में प्रकाशित हुआ। यह समय प्रायः विक्रम संवत् ६६७ का होगा। उस समय वह चालीस वर्ष के हो चुके थे। प्रायः प्रति वर्ष एकान्त चिन्तनार्थ उपरोक्त स्थान पर उनका जाना होता था। इसी ईश्वरीय ज्ञान के हृदयस्थ होने को 'वही' का उतरना कहते हैं। 'वही' के उतरने के विषय में भी भिन्न-भिन्न विचार हैं। इसके विषय में सर्वमान्य होने से क़ुरान के ही कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

'अवश्य यह (क़ुरान) जगदीश ने उतारा है, और उसके साथ, एक आप्त (देवदूत) उतरा।' (२६ : ११ : २,३)

यह आप्त दूत और कोई नहीं, स्वयं देवेन्द्र जिब्राईल थे, जो हज़रत के पास 'वही' लाते थे। देवदूतों या फ़िरिश्तों के बारे में

अनेक कथाएँ इस्लामी साहित्य में पाई जाती हैं। जैसे वृहदाकार अनेक शृंगादि संयुक्त होना इत्यादि। किन्तु क़ुरान में ऐसा वर्णन कहीं नहीं आया है। क़ुरान के उतरने ही के कारण, 'रमज़ान्' का महीना, बहुत पवित्र माना गया है। कहा है—

रमज़ान में उतरना विभाग

'पवित्र रमज़ान का महीना, जिसमें मार्ग-प्रदर्शक, मानव-शिक्षक, (सत्यासत्य) विभाजक, स्पष्ट क़ुरान उतारा गया। अतः तुममें से जो कोई 'रमज़ान' महीने को पावे, उपवास रखे और यदि रोगी या यात्रा में हो, तो दूसरे दिनों में'। २ : २३ : ३।

'रमज़ान' अरबी का नवाँ महीना है। शब्दार्थ 'जिसमें गर्मी की अधिकता हो' अथवा 'गर्मी की अधिकता से युक्त' है। जिस रात्रि में 'वही' प्रथम-प्रथम उतरी, वह 'रमज़ान' के अन्तिम दस दिनों में अन्यतम 'लैलतुल्क़द्र' अथवा महारात्रि के नाम से विख्यात है (९७ : १ : १)। वह रात्रि और मास दोनों ही जिनमें पवित्र .क़ुरान उतरा—इस्लाम-धर्म में बहुत पवित्र माने जाते हैं। 'क़द्र' के नाम से .क़ुरान में एक अध्याय (सूरत) भी है।

क़ुरान-संग्रह

यह पहिले कहा जा चुका है, कि सम्पूर्ण क़ुरान एक साथ नहीं उतरा। हज़रत की अवस्था के चालीसवें वर्ष से लेकर ६३ में वर्ष (मृत्यु के समय) तक—अर्थात् २३ वर्षों में थोड़ा-थोड़ा करके उतरा है। अतः आरम्भ ही में क़ुरान का पुस्तक रूपेण संग्रथित होना सम्भव नहीं। वाक्य और अध्याय भी अपने उतरने के समय के क्रम से वर्तमान पुस्तक .क़ुरान में स्थापित नहीं किये गये हैं। '.क़ुरान' के कितने ही वाक्य मक्का में और कितने ही मदीना में उतरे हैं। जिससे .क़ुरान के ११४ अध्याय 'मक्की' 'मदनी' दो भेदों में विभक्त हैं। .क़ुरान के देखने से मालूम होता

है कि उसमे इस भेद पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। हाँ पहिले अध्यायों की अपेक्षा पिछले अध्याय प्राय: छोटे हैं। प्रथम अध्याय 'फ़ातिहा' के अनन्तर दूसरा अध्याय 'अलबक़ा' या बक़ा, (बक़्, बक़्त) है, जो 'मदीना' में उतरा। उसके बाद का 'आल इम्रान' भी मद्नी है। अस्तु। यह निश्चित है कि, महात्मा के जीवन में .कुरान वर्तमान पुस्तक-क्रम में सम्पादित नहीं हुआ था। .कुरान में आया 'किताब' शब्द भी उसके वर्तमान-पुस्तक की ओर संकेत नहीं करता; बल्कि, उसके उस रूप की ओर संकेत करता है जो कि स्वर्गीय-पुस्तक 'लौह-महफूज़' मे सुरक्षित है। महात्मा के जीवन-काल से ही उसके एक-एक वाक्य को बड़ी सावधानता से रेशम, चर्म और अस्थियों पर लिखकर रक्खा जाता था। कितने ही भक्तजन उन्हें कण्ठस्थ भी कर लिया करते थे। इस प्रकार .कुरान के सम्पूर्ण अंश भली प्रकार सुरक्षित रक्खे गये थे। पीछे जब पाठों और वाक्यों में भेद होने लगा तो, चतुर्थ खलीफ़ा 'उस्मान' को एक पुस्तक के रूप में सबको संग्रह करने की आवश्यकता पड़ी। इसी संग्रह की प्रामाणिकता के विषय में बहुत मतभेद है। उस समय 'खलीफ़ा' या उत्तराधिकारी होने के लिये महात्मा के अनुयायियों में विवाद उठ .खड़ा हुआ। जो बढ़ते-बढ़ते गृह-युद्ध की अग्नि को प्रज्वलित करने में समर्थ हुआ और महात्मा की प्रिय पुत्री 'फ़ातिमा' तथा जामाता वीरवर 'अली' के पुत्र, 'हसन' और 'हुसेन' जिसकी आहुति हुए। यह विवाद देह-सम्बन्धियों और धर्म-सम्बन्धियों में उत्तराधिकारी (खलीफ़ा) होने के विषय में था। देह-सम्बन्धियों के उत्तराधिकार को युक्त माननेवाले ही 'शीआ' लोग है। और दूसरे (बहुसंख्यक) सुन्नी के नाम से पुकारे जाते है। महात्मा के कोई जीवित पुत्र न था। पुत्रियों में श्रीमती फ़ातिमा के यही दो पुत्र 'हसन' और 'हुसेन' थे। वे कुछ मुसल्मानों की स्वार्थसिद्धि में बाधक जान पड़ते थे;

और उन्होंने उन्हें बारी-बारी से तलवार के घाट उतार छुट्टी पाई। वर्तमान पुस्तक के रूप में .कुरान का संग्रह खलीफ़ा 'उस्मान' ने कराया था। यही 'सुन्नियों' के मुखिया थे। 'शीआ' लोगों का कहना है कि, इस पुस्तक में .कुरान के कितने ही वाक्य और कितने ही अध्याय भी छोड़ दिये गये हैं। उदाहरणार्थ वह 'सिज्दा' अध्याय के कितने ही वाक्य उपस्थित करते हैं। प्राचीन भाष्यकारों ने भी उनमें से कितने ही को जहाँ-तहाँ उद्धृत किया है। पटना की '.खुदाबक्स लाइब्रेरी' में हस्तलिखित .कुरान की एक प्राचीन प्रति है, जिसके, अन्त में भी ऐसे अनेक वाक्यों का संग्रह है। वर्तमान '.कुरान' ३० 'सिपारो' या खण्डों में विभक्त है, कितनों ही का कहना है कि, पहले इनकी संख्या चालीस थी। अस्तु।

वाक्य-परिवर्तन

अध्याय 'अल्बक़' में आया है—

'जिन 'आयतों' (वाक्यों) को हम स्थानान्तरित या परिवर्तित करते हैं। उसके समान या उससे अच्छी लाते हैं। क्या तू नहीं जानता कि, परमेश्वर सब चीज़ों पर शक्तिमान् है।' (२ : १३ : ३)

'जब हम 'आयत' के स्थान पर दूसरी आयत बदलते हैं। और परमेश्वर जो कुछ बदलता है, उसे भली प्रकार जानता है।' (१६ : १४ : १)

.कुरान के कितने ही वाक्य जो पहिले, माननीय ठहराये गये थे, पीछे उन्हें छोड़कर दूसरी आज्ञाएँ आईं। इसी बात का उपरोक्त वाक्यों में वर्णन है। इसका तात्पर्य ईश्वर की आज्ञा के देश काल के अनुसार होने से है। समयान्तर में 'मूसा', 'ईसा' को दिये गये ईश्वरीय ज्ञान के भी कुछ अंश अनुपयुक्त हो गये,

जिस पर उनके पीछे दूसरे ईश्वरदूतों को ईश्वर का सन्देश लाने की आवश्यकता पड़ी। उसी प्रकार महात्मा मुहम्मद के पास भेजे गये कितने ही अंश पीछे उपयोगी न रहे, इसलिये ईश्वर ने उन्हें बदल दिया।

मनुष्यों की पहले एक जाति थी

'उस (ईश्वर) ने आदम को सम्पूर्ण ज्ञान सिखाया'। (२ : ४ : २)

'सब जातियों के लिये ईश्वर-प्रेरित (भेजे गये) '। (१० : ५ : ६)

'कानन्नासु उम्मतिन् वाहिदतिन्' (सारे मनुष्य एक जाति थे) इनमें इस तत्त्व पर प्रकाश डाला गया है कि, पहिले मनुष्यों की एक ही जाति थी, और उनकी शिक्षा के लिये सबके पितामह 'आदम' (आदिम-पूर्वज) को ईश्वर ने ज्ञानोपदेश किया। पीछे जब मनुष्य अनेक जातियों में विभक्त हो गये, तो उनके उपदेश के लिये ईश्वर ने प्रत्येक जाति में एक-एक ईश्वरीय शिक्षक नियुक्त किये। यह भी इसलिये कि, उन्होंने उस प्राचीन ज्ञान को भुला या अदल-बदल दिया था।

'.कुरान' प्राचीन शास्त्रों का समर्थक

'हे मुहम्मद, तुझ पर सत्य संयुक्त ग्रन्थ उतारा, जो पूर्वतनों का समर्थक है।' (३ : १ : ३)

'कह, जो कुछ हम पर, इब्राहीम, इस्माईल, इस्हाक़, याक़ूब, जाति (इस्राईल-सन्तति), मूसा, ईसा और दूसरे ऋषियों पर परमेश्वर की ओर से उतरा। हम उनमें से किसी को अलग नहीं करते। हम सब पर, और परमेश्वर पर विश्वास रखते हैं।' (३ : ९ : ४; अथवा कुछ भेद से २ : १६ : ७)

ये वाक्य प्रत्येक मुसल्मान को इस बात की शिक्षा देते हैं, कि वह भूमण्डल के सारे ऋषियों की शिक्षा पर विश्वास और आदर बुद्धि रक्खे। प्रायः सारे ही महापुरुषों और धर्माचार्यों को यह कहते हुए सुना जाता है कि वह किसी नूतन सिद्धान्त का प्रचार नहीं कर रहे हैं बल्कि, वह उसी सनातन तत्त्व का प्रचार कर रहे हैं जो, कालान्तर में विस्मृत हो गया था।

यहाँ क़ुरान की वर्णन-शैली के विषय में कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा। गद्य होने पर भी उसकी रचना बड़ी चित्ताकर्षक है, यह ऊपर लिख आये हैं। प्राचीन महात्माओं और राजाओं के उपदेशप्रद इतिहास .क़ुरान का एक विशेष भाग ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे दृष्टान्तों और सुन्दर कहावतों का भी प्रयोग जहाँ-तहाँ किया गया है। 'हम तुझसे बहुत अच्छी कथा बयान करते हैं। तू (मुहम्मद) अज्ञानियों में से था, इसलिये तेरे पास यह .क़ुरान भेजा।' (१२ : १ : ३)

कहीं-कहीं नास्तिकों (=काफ़िरों) और दूसरों के आक्षेपों का उत्तर भी दिया गया है—

(काफ़िर कहते हैं कि) यदि वह (मुसलमान) हमारी बात मानते तो न मारे जाते। कह, यदि तुम सच्चे हो तो मौत को अपने ऊपर से हटा देना। (३ : १७ : १३)

इस्लाम-विरोधियों के विद्वेष के विषय में कहा है—

ईश्वर-सत्ता-वर्णन

"चाहते हैं कि ईश्वर की ज्योति को मुँह से (फूँककर) बुझा दें, किन्तु प्रभु प्रकाश को पूर्ण किये बिना नहीं रह सकता; चाहे नास्तिक (काफ़िर) बुरा मानें।" (६ : ५ : ३)

ईश्वर के अचिन्त्य निर्माण-कौशल को इन शब्दों में वर्णन किया गया है—

"उनके लिये तू एक सांसारिक दृष्टान्त वर्णन कर। हमने आकाश से जल उतारा फिर उससे भूमि पर वनस्पति उगी। पुनः वह कणशः हो गई (और) उसे वायु उड़ाता (फिरता) है। परमेश्वर सब चीज़ों पर शक्तिमान् है।" (१८ : ६ : १)

ईश्वर की सत्ता के बारे में आया है—

'परमेश्वर, आकाश और पृथ्वी का प्रकाश है। उसका प्रकाश है मानों ताक में दीपक और दीपक काँच में, काँच तारा के समान है। उसमें अपौर्वत्य अपाश्चात्य 'जैतून' वृक्ष का तेल पड़ा है। यद्यपि उसे आग ने छुआ नहीं है, किन्तु समीप है, कि उसका तेल प्रज्वलित हो जाय। प्रकाश के ऊपर प्रकाश !! परमेश्वर अपने प्रकाश से चाहे जिसको शिक्षा दे। ईश्वर मनुष्यों के लिये दृष्टान्त वर्णन करता है। वह सब वस्तुओं का ज्ञाता है।" (२४ : ५ : १)

कहावतें

विस्तारभय से अधिक न लिखकर यहाँ दो-चार कहावतें उद्धृत की जाती हैं—

'वञ्चना हत्या से बढ़कर है।' (२ : २७ : १)

'सारे प्राणी मृत्यु के आस्वाद (या ग्रास) हैं...'

'संसार का जीवन व्यर्थ अभिमान के अतिरिक्त कुछ नहीं।' (३ : १६ : ४)

'मनुष्य निर्बल उत्पन्न किया गया है।' (४ : ५ : ३)

'ला अलर्रसूलि इल्लल् बलाग़ [पहुँचा देने के सिवा दूत पर (और कुछ कर्त्तव्य) नहीं]।'

"मनुष्य, सचमुच हृदय का कच्चा बनाया गया है।"

(७० : १ : १६)

क़ुरान की मनोहर रचना, सुन्दर शब्द-व्यवहार के कारण एक कहावत प्रसिद्ध है, जिसे स्वयं क़ुरान ने इस प्रकार वर्णन किया है।

'क्या कहते हैं? बना लाया। कह, उसके सदृश कोई सूरत (अध्याय तुम भी बना) लाओ। (इसके लिये) परमेश्वर के सिवाय जिसको (सहायतार्थ) बुला सको, बुलाओ; यदि तुम सच्चे हो।' (१० : ४ : ८)

महात्मा मुहम्मद के यह कहने पर, कि मैं जो कुछ क़ुरान के वाक्य सुनाता हूँ, सब भगवान् ने मेरे पास भेजे हैं। लोग कहते थे कि यह झूठा है। मुहम्मद स्वयं इन बातों को बना लेता है और पीछे ईश्वर को उनका बनानेवाला कहता है। इसी बात की ओर यहाँ संकेत किया गया है। यह वाक्य क़ुरान में अनेक बार आया है। इसी विषय पर और भी कहा है।

पुराने वाक्यों को प्रमाणित

'यदि मनुष्य और जिन्न एकत्रित हों, एक दूसरे के सहायक होकर भी इस क़ुरान ऐसा (ग्रंथ) बनाना चाहें तो (भी) नहीं (बना) ला सकते।' (१७ : १० : ४)

यह भी एक से अधिक बार आया है—

उपरोक्त वाक्यों से पाठकों को आगे बड़ी सहायता मिलेगी। क़ुरान के सारे मध्यम पुरुष के एक वचन में प्रयुक्त होनेवाले वाक्य, अधिकतर स्वयं महात्मा मुहम्मद और बहुवचन में, मुसल्मानों या नास्तिकों को सम्बोधित करके कहे गये हैं। एक बात और स्मरण रखनी चाहिये कि क़ुरान की पठन-पाठनप्रणाली, अविच्छिन्न रूप से आज तक चली आई है। समय के परिवर्तन, राज्य-क्रान्ति और विजेताओं की धर्मान्धता जिस प्रकार हिन्दुओं और यहूदियों के धार्मिक साहित्य के अधिकांश को विनाश करने

में सफल हुई, वैसा मुसलमानों के साहित्य के साथ नहीं हुआ। इसीलिये क़ुरान के यथार्थ अर्थ समझने के लिये परम्परागत भाष्य, कथानक और शब्द-रहस्य की अनिवार्य आवश्यकता है। क़ुरान का प्रत्येक वाक्य किसी न किसी विशेष देश, काल और व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है; जैसा कि आगे देखने से ज्ञात होगा। उस सम्बन्ध को जानने के लिये वही परम्परा एक मात्र साधन है; इसलिये परम्परा को छोड़कर मनगढ़न्त अर्थ करनेवाली अनेक कल की टीकायें माननीय नहीं कही जा सकतीं।

तृतीय विन्दु

.क़ुरान और उसके सम-सामयिक

मक्का-निवासियों में अपने धर्म की शिक्षा का प्रचार करते समय, 'काबा' के पुजारी 'क़ुरैश' महात्मा मुहम्मद को भाँति-भाँति के कष्ट देने लगे। जब चचा के मरने पर उनका शत्रुता बहुत बढ़ गई, और अन्त में वह लोग प्राण लेने पर उतारू हो गये, तो महात्मा ने भागकर 'मदीना' को अपना निवास-स्थान बनाया। इसी प्रवास के तिथि से मुसल्मानों का 'हिज्री' सम्वत् प्रारम्भ होता है। .क़ुरान में इन्हीं मूर्ति-पूजकों को 'काफ़िर' या नास्तिक के नाम से पुकारा गया है। उस समय 'मदीना' में यहूदी लोग भी पर्याप्त संख्या में निवास करते थे, और व्यापार में चतुर होने से वह बड़े प्रभावशाली तथा धनाढ्य हो गये थे। कहीं-कहीं ईसाई लोगों की भी बस्ती थी। इस प्रकार महात्मा को इन धर्मानुयायियों के संसर्ग का भी वहाँ विशेष अवसर मिला। इन धर्मानुयायियों का वर्णन .क़ुरान में भी आता है। इनके अतिरिक्त उन्हें कुछ ऐसे लोगों की संगति भी पहिले ही से प्राप्त थी, जो मूर्तिपूजकों के घर उत्पन्न होकर भी मूर्तिपूजा में श्रद्धा रखनेवाले न थे, और न वह यहूदी या ख्रीष्ट धर्म ही के अनुयायी थे। इन लोगों में, 'साअ़दा'-पुत्र क़ैस, 'हज़श'-पुत्र 'अब्दुल्लाह', 'हवारिस'-पुत्र 'उस्मान', और 'अ़म्र'-पुत्र 'ज़ैद' प्रसिद्ध हैं। यह लोग यद्यपि क़ुरान की शिक्षा को अच्छा मानते थे, परन्तु स्वयं इस्लाम-धर्म के अनुयायी न हुए। महात्मा मुहम्मद के साले; श्री 'ख़दीजा' के भाई, 'नौफ़ल-पुत्र' बक़्र की भी इस्लाम के प्रति सहानुभूति थी।

यहूदी

यहूदी धर्म के महात्मा, इब्राहीम, इस्हाक़, दाऊद, सुलेमान क़ुरान के भी माननीय महात्मा और रसूल हैं। अपने वंश के प्रति बड़े अभिमानी यहूदी लोग महात्मा के मदीना (यस्रिब्) आने पर, पहिले कुछ समय तक तो मुसल्मानों के विरोधी न थे; परन्तु जब उन्होंने देखा कि हमारी प्रधानता अब घट रही है, और मुहम्मद का प्रभाव अधिक बढ़ता जा रहा है; तो वह भी द्रोही हो गये। इस्लाम की शिक्षा का बहुत-सा भाग यहूदी और ईसाई धर्मों से लिया गया है। दोनों धर्मों के प्रति आरम्भ ही से महात्मा की बड़ी श्रद्धा थी। यहाँ तक कि 'नमाज़' भी पहिले मुसल्मान लोग उन्हीं के पवित्र स्थान 'योरुशिलम्' की ओर मुँह करके पढ़ते आ रहे थे। जब यहूदियों ने शत्रुता करनी शुरू की, तो महात्मा मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को 'योरुशिलम्'से मुँह हटाकर 'काबा' को अपना 'क़िब्ला' (सम्मुख का स्थान) बनाने की आज्ञा दी। यहूदियों के व्यवहार के विषय में कहा गया है—

यहूदियों में कुछ लोग ईश्वर-वाक्य (क़ुरान) को सुनते हैं। फिर जो कुछ उन्होंने जाना था, उसे बदल देते हैं, और इसे वह जानते हैं।' (२ : ९ : ४)

'यहूदी वाक्य को उसके स्थान से बदल देते हैं।' (४ : ७ : ४)

महात्मा और उनके अनुयायियों का विश्वास था कि, यहूदी लोगों के ग्रन्थों में मुहम्मद क रसूल (प्रेरित) होकर आने की भविष्यद्वाणी है; किन्तु वह लोग इसे बदलकर दूसरा ही कह देते हैं; जिसमें कि कहीं इस्लाम को इससे दृढ़ होने में सहायता न मिल जाय। ऊपर उद्धृत दूसरे वाक्य में इसी बात को ओर

संकेत है। इसके अतिरिक्त अन्य आक्षेप भी यहूदियों पर पाये जाते हैं। जैसे—

'कुछ धन मिलने के लिये, अपने हाथ से पुस्तक लिखकर, यह कहनेवालों को धिक्कार है कि, यह ईश्वर की ओर से है।' (२ : ६ : ८)

'कोई-कोई यहूदी चाहते हैं, कि तुम्हें (मुसल्मानों को) पथ-भ्रष्ट कर दें। किन्तु उन्हें मालूम नहीं कि, वे अपने सिवाय दूसरे को (ऐसा) नहीं कह सकते। हे ग्रन्थ[1] वालों! तुम लोग साक्षी हो, फिर क्यों नहीं ईश्वर के वचनों (क़ुरान) पर विश्वास करते? हे ग्रन्थवालों! जानते हुए भी तुम क्यों सत्य को असत्य से ढाँककर छिपाना चाहते हो॥' (३ : ७ : ६–८)

क़ुरान और यहूदियों के धर्म में बहुत समानता और मूर्ति-पूजकों के सिद्धान्त से घोर विरोध है; तो भी द्वेष के मारे यहूदी लोग, मुसल्मानों से मूर्तिपूजकों को भी अच्छा बतलाते थे। यथा—

'विश्वासियों (मुसल्मानों) से यह (नास्तिक) ही अधिक सुमार्ग पर आरूढ़ हैं; इस प्रकार नास्तिकों (काफ़िरों) को कहने वाले मूर्ति और शैतान के विश्वासी, ग्रन्थ के कुछ अंश पानेवालों को तू (मुहम्मद) नहीं देखता?' (४ : ८ : १)

महात्मा तो यहूदियों को आस्तिक समझ केवल मुसल्मानों के लिये ही प्रयुक्त होने वाले, 'अस्सलामु अलैकुम्' (तुम्हारा मङ्गल हो) वाक्य को कहकर प्रणाम करते थे; किन्तु, डाह के मारे यहूदी इसके उत्तर में 'अस्सामु अलैकुम्' अथवा 'व अलैकुमुस्सामु' (=और तुम पर मृत्यु हो) कहा करते थे।

यहूदियों के धर्मग्रन्थों का क़ुरान ने भी ईश्वरीय माना था।

---

[1] यहाँ ग्रंथवालों से यहूदी अभिप्रेत हैं, जिन्हें मूसा, दाऊद आदि रसूलों द्वारा 'तौरेत', 'ज़बूर' आदि ईश्वरीय ग्रंथ मिले।

इस विश्वास से लाभ उठाकर, वह मुसल्मानों को धोखा देते थे।

'जिसमें तुम समझो कि यह ईश्वरीय पुस्तक है, इसलिये उनमें से कितने, जीभ लौटा कर पढ़ते हैं, और कहते हैं कि यह ईश्वर की ओर से है; किन्तु न वह ईश्वर की ओर से है, न उस ग्रन्थ में से। जान-बूझ कर ईश्वर पर वह मिथ्यारोपण करते हैं।' (३ : ८ : ७)

जब यहूदियों से कहा जाता था कि, जिस प्रकार तुम लोग इब्राहीम, मूसा आदि महात्माओं को ईश्वर-प्रेरित समझते हो, उसी प्रकार महात्मा मुहम्मद को भी क्यों नहीं समझते ? तब वे लोग कहते थे—

'ईश्वर ने हमसे प्रतिज्ञा की है, कि जब तक कोई ऐसी बलि के साथ न आये, जिसे अग्नि (स्वयं) खाये; तब तक किसी पर तुम लोग विश्वास न करना कि यह ईश्वर-प्रेरित है।'

जिसके उत्तर मे फिर वहीं कहा गया है—

"कह, 'मुझसे पहिले कितने प्रेरित चिह्नों के साथ तुम लोगों में आये। यदि तुम सत्यवादी हो, तो (तुमने) क्यों उन्हें मारा[१]।' (३ : १५ : ३)

शत्रुता हो जाने पर यहूदियों के चर महात्मा के पास आ-आ कर उनकी शिक्षा और अन्य वृत्तान्तों का पता लगा अपने सर्दारों को खबर देते थे। वहाँ से यह खबर 'मक्का' वाले शत्रुओं को दे दी जाया करती थी। इन्हीं चर के विषय में यह वाक्य है—

'पास में आये भक्ष्य अभोजी, उन झूठे दूतों को आज्ञा दे

---

१ यहाँ 'ज़क्रिया' आदि यहूदियों के प्रेरित अभिप्रेत है; जो दिव्य प्रमाणों के साथ आये थे और यहूदियों ने उन्हें मार डाला। (३:१६:३)

(कि न आवें) अथवा उपेक्षित कर दे। यदि उपेक्षा करे तो वह तेरी हानि नहीं कर सकते।' (५ : ६ : ८)

लड़कपन में एक बार ईसाई संन्यासी 'बहेरा' से महात्मा मुहम्मद की मुलाकात का ज़िक्र पहिले आ चुका है। यौवनावस्था में भी उन्हें एक बार उस महापुरुष के सत्संग से लाभ उठाने का अवसर फिर प्राप्त हुआ। ऐसे ही तेजस्वी, सदाचारी महात्माओं के परिचय ने उनके हृदय में ईसाई-धर्म और उसके अनुयायियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। क़ुरान में कहा है—

'यहूदियों और 'काफ़िरों' (नास्तिकों) में तू बहुत से क्रूर और डाहवाले आदमियों को पायेगा; किन्तु जो अपने को ईसाई कहते हैं उनमें से बहुतों को तू सौहार्द और समीपता से युक्त पायेगा; क्योंकि उनमें निरभिमानी विद्वान् संन्यासी हैं।' (६ : २ : ५)

ईसाइयों से यों भी कोई आर्थिक चढ़ा-ऊपरी न थी, जिससे कि उनका मुसल्मानों के साथ विरोध होता। यद्यपि ईसाइयों की प्रशंसा इस प्रकार लिखी गई है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि, उनके सिद्धान्तों का खण्डन क़ुरान में नहीं किया गया है। ईसाई-धर्म में ईश्वर तीन रूप में विद्यमान माना जाता है। (१) पिता जो स्वर्ग में रहता है। (२) पुत्र—प्रभु ईशू खीष्ट जिन्होंने संसार के हितार्थ कुमारी मरियम के गर्भ से संसार में अवतार लिया, और अज्ञानियों तथा अन्यायियों ने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया। (३) पवित्रात्मा—जो भक्तजनों के हृदय में प्रवेशकर उनके मुख या शरीर द्वारा त्रिकाल का ज्ञान या अन्य धार्मिक रहस्यों को खोलता है। इस विषय में क़ुरान का कहना है—

"ईश्वर तीनों में से एक है, ऐसा कहनेवाले जरूर नास्तिक

हैं। भगवान् एक है। उस एक के अतिरिक्त और नहीं।" (६ : १० : ७)

"मरियम-पुत्र यीशू पहिले प्रेरितों की भाँति एक प्रेरित था दूसरा नहीं। और उसकी माता एक सती स्त्री थी। दोनों आहार भक्षण करते थे। देखो युक्तियों को कैसे मैं (ईश्वर) वर्णन करता हूँ, किन्तु वह (ईसाई) विमुख हैं।" (६ : १० : ८)

वंचक (मुनाफ़िक)

मदीना आने पर, जिन मूर्तिपूजकों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार किया, उन्हें 'अन्सार' कहा जाता है; इनमें बहुत से वंचक मुसल्मान भी थे, जिन्हें 'मुनाफ़िक' का नाम दिया गया है। इन्हीं के विषय में कहा गया है—

'हम निर्णय-दिन (क़यामत) और भगवान् पर विश्वास रखते हैं—ऐसा कहते हुए भी वह, विश्वासी (=मुसल्मान) नहीं हैं। परमेश्वर और मुसल्मानों को ठगते हुए वह अपने ही को ठगते हैं।' (२ : २ : १, २)

"विश्वासियों (मुसल्मानों) के पास जब गये तो, कहा हम विश्वास रखते हैं; राक्षसों (नास्तिकों) के पास निकल जाते हैं तो कहते हैं—(मुसल्मानों से) हँसी करते हैं, अन्यथा हम तो तुम्हारे साथ हैं।" (२ : २ : ७)

"वह दोनों के बीच लटकते हैं, न वह उधर के हैं, न इधर के।" (३ : २१ : २)

इसीलिये मरने पर—

"निस्सहाय होकर (वह) नरक की अग्नि के सबसे निचले तल में रहेंगे।" (३ : २१ : ४)

काफ़िर (नास्तिक)

यह पहिले कहा जा चुका है कि, उस समय 'अरब' में मूर्ति-

पूजा का बहुत अधिक प्रचार था। .कुरान में सबसे अधिक ज़ोरों से इसी का खण्डन किया गया है। महात्मा मुहम्मद ने जब यह सुना कि 'काबा' मन्दिर के निर्माता हमारे पूर्वज महात्मा 'इब्राहीम' थे, जो मूर्तिपूजक नहीं थे, तो उन्हें इस अपने काम में और बल-सा प्राप्त हुआ मालूम होने लगा। उनकी यह इच्छा अत्यन्त बलवती हो गई कि, कब 'काबा' फिर मूर्ति-रहित होगा। उन्होंने सच्चे देवता की पूजा का प्रचार और झूठे देवता की पूजा का खण्डन अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य रखकर बराबर अपने काम को जारी रखा। 'अरब' की काशी 'मक्का' में, 'कुरैशी' पण्डों का बड़ा ज़ोर था। यह लोग अपने अनुयायियों को कहते थे—

'वद्द', 'सुबाअ्', 'यग़ूस', 'नस्र' अपने इष्टों को कभी न छोड़ना चाहिये। (७१ : १ : २३)

'.कुरान' के उपदेश को वह लोग कहते थे—

"यह इस मुहम्मद की मन-गढ़न्त है।" (११ : ३ : ११)

'इसको कोई विदेशी सिखाता है।···हम अच्छी तरह जानते हैं, उस सिखानेवाले की भाषा अरबी से भिन्न है, और यह अरबी।' (१६ : १४ : ३)

वह लोग महात्मा के रसूल होने के बारे में कहते थे—

"हम लोग विश्वास नहीं करते, जब तक वह भूमि से (जल का) सोता न निकाल दे। या खजूर, अंगूर आदि का (ऐसा) बग़ीचा न उत्पन्न कर दे, जिसमें कि नहर बहती हो। अथवा अपने कहे अनुसार आकाश को टुकड़े-टुकड़े करके हमारे ऊपर न गिरा दे। या परमेश्वर या देवदूतों को प्रतिभू (=ज़ामिन) के तौर पर न लावे। या अच्छा महल (इसके लिये) हो जाय। अथवा आकाश पर चढ़ जाय। किन्तु उसके चढ़ने पर भी हम विश्वास नहीं करेंगे; जब तक हम लोगों के पढ़ने लायक कोई लेख न लाये।" (१७ : १० : ७–१०)

काफ़िरों की उक्तियाँ

क़ुरान में पुराने रसूलों के लिये अनेक चमत्कार लिखे हैं। जैसे महात्मा मूसा ने पत्थर से बारह जल-स्रोत बहा दिये, अपने साथियों को स्वर्गीय भोजन, 'मन्न' और 'सलवा' दिया करते थे। इब्राहीम के पास तो ख़ुदा बराबर ही आया करते थे। महात्मा ईसा आकाश पर चढ़ गये इत्यादि इन बातों ही को वह लोग भी कहते थे कि यदि तुम प्रभु-प्रेरित हो तो क्यों उसी प्रकार के चमत्कार नहीं दिखाते ? और भी अनेक प्रकार से वह लोग हँसी उड़ाते थे। नीचे कुछ और उद्धरण उनके व्यवहारों का दिया जाता है—

"भोजन करता है, बाज़ार में घूमता है, यह कैसा रसूल (प्रभु-प्रेरित) है ? क्यों नहीं इसके पास देवदूत आता, जो इसके साथ (हमें) डराता ? क्यों नहीं इसके पास कोष (खज़ाना) और बाग़ हुआ, जिसका यह उपभोग करता ?" (२५ : १ : ७, ८)

"क्या हम किसी पाग़ल, दरिद्र, तुकबन्द (कवि) की बात में पड़कर अपने इष्टों को फेंक दें ?" (३७ : २ : ३)

उस समय पश्चिमी अरब 'हिजाज़' में दो बड़े-बड़े सर्दार थे; एक मक्का के '.क़ुरैश' वंश का सर्दार, दूसरा 'तायफ़' का सामन्त। महात्मा मुहम्मद .क़ुरैश वंश के हाशिम परिवार के थे। यह लोग उतने धनी-मानी न थे। .क़ुरैश मूर्तिपूजक कहते थे—

भगवत्-सान्त्वना

"दोनों बस्तियों (मक्का, तायफ़) के सामन्तों में से एक के ऊपर क्यों नहीं (.क़ुरान) उतरा ?" (४३ : ३ : ६)

.क़ुरान में वर्णित अनेक प्राचीन महात्माओं की कथाओं को सुनकर वह कहते थे—

"हम लोग भी ऐसा वर्णन कर सकते हैं। कुछ भी नहीं यह तो पूर्वजों की कहानी है।" (८ : ४ : ३)

"यह तो पूर्वजों (पहिलों) की कहानी है" यह बात बार बार क़ुरान में क़ुरेशों के आक्षेप-रूप से आई है। इनके परिहास और निठुर व्यवहार से महात्मा निराश न होते थे, उनके हृदय में आकाशवाणी होती थी—

"तुझसे पहिले भी (लोगों ने) बहुत से प्रेरितों की हँसी उड़ाई और फिर वह उन्हीं के ऊपर लौटकर पड़ी।" (२१:३:१२)

महात्मा की दृढ़ता

ऊपर के कथन से यह अच्छी प्रकार मालूम हो गया होगा, कि 'इस्लाम' को बालपन ही से सब का विरोध सहना पड़ा। उसने निर्भीकतापूर्वक जब दूसरों के मिथ्या-विश्वासों का खण्डन किया तो, सभी ने भरसक इस्लाम को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। सचमुच जिस प्रकार का विरोध था यदि उसी प्रकार की दृढ़ता मुसल्मानों और उनके धर्मगुरु ने न दिखाई होती; तो कौन कह सकता है, कि इस्लाम इस प्रकार संसार के इतिहास को पलट देने में समर्थ होता।

चतुर्थ विन्दु

महात्मा मुहम्मद और उनके सम्बन्धी

क़ुरान में अनेक वाक्य महात्मा मुहम्मद के परिवार, इस्लाम-धर्म में उनकी स्थिति आदि के सम्बन्ध में भी कहे गये हैं। अपने धर्म-प्रवर्तकों को ईश्वर, या उसका अवतार बना डालना धर्मानुयायियों का स्वभाव है; इसीलिये क़ुरान में "(मुहम्मद) प्रेरित के अतिरिक्त कुछ नहीं" (३ : १५ : १) वाक्य बार बार दुहराया गया है।

महात्मा मुहम्मद के प्रभु-प्रेरित होने के विषय में निम्नलिखित क़ुरान के उद्गार हैं—

'जिसके पास 'तौरात'[१] और 'इञ्जील'[२] में से उद्धरण है। जिसका उपदेश पुण्य कर्म के लिये है और निषेध पाप कर्म के लिये। जो पवित्र (वस्तु) को भक्ष्य (हलाल) और अपवित्र को अभक्ष्य (हराम) करता है। जो उन (धर्मानुयायियों) से उनके ऊपर भार और फन्दे को अलग करता है। उस निरक्षर प्रेरित ऋषि के जो अनुयायी, विश्वासी तथा सहायक हैं; और उसके साथ उतरे प्रकाश (क़ुरान) का अनुसरण करते हैं; वही पुण्य के भागी हैं।" (७ : १९ : ६)

महात्मा का सम्मान

"मैं मुहम्मद तुम्हारे सबके पास उस प्रभु का भेजा हुआ (प्रेरित) हूँ, जिसका शासन पृथ्वी और आकाश दोनों में है।" (७ : २० : १)

१—मूसा को दिया गया ईश्वरीय ग्रंथ, यहूदियों की धर्म पुस्तक।

२—ईसा को दिया गया ईश्वरीय ग्रंथ, ईसाइयों की धर्म पुस्तक।

"कह, मैं नया प्रेरित नहीं हूँ,...... ...जो कुछ प्रभु मेरे पास भेजता है, मैं उसीका अनुसरण करता हूँ। मंगल और अमंगल का सुनानेवाला छोड़ मैं कुछ नहीं हूँ।" (४६ : १ : ६)

इस्लाम में यद्यपि महात्मा मुहम्मद ईश्वर या ईश्वर के अवतार नहीं माने गये; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान कम है। कहा है—

"तेरे (मुहम्मद के) साथ हाथ मिलानेवाले भगवान् के साथ हाथ मिलाते हैं। (मुहम्मद का हाथ नहीं) परमेश्वर का हाथ उनके हाथों में है।" (४८ : १ : १०)

इञ्जील में उनके लिये भविष्यवाणी

"हे विश्वासियो (मुसल्मानो !) प्रेरित (मुहम्मद) के स्वर से तुम ऊँचा न चिल्लाओ; और उसके साथ उस प्रकार से बातचीत न करो, जैसे तुम आपस में एक दूसरे से बोलते हो।" (४६ : १ : २)

"परमेश्वर और देवदूत, प्रेरित के पास आशीर्वाद भेजते हैं। हे विश्वासियो ! (तुम भी) उसके लिये आशीर्वाद और शान्ति की कामना करो।" (३३ : ७ : ४)

मुसल्मानों का यह भी विश्वास है कि, यहूदियों की भाँति ईसाइयों के भी धर्मग्रन्थ में महात्मा मुहम्मद के प्रेरित होकर आने की भविष्यद्वाणी है; किन्तु दुराग्रहवश वह इसे स्वीकार नहीं करते। क़ुरान में यह भाव निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया गया है—

"जब मरियम के पुत्र ईसा ने कहा—हे इस्राईल की सन्तानो! (यहूदियो !) मैं प्रभु-प्रेरित होकर तुम्हारे पास आया हूँ; पहिली (पुस्तकों) 'तौरात' आदि को प्रमाणित मानता हूँ; और एक

प्रेरित का शुभ समाचार देता हूँ, जो मेरे बाद आवेगा, उसका नाम मुहम्मद है। फिर जब वह (मुहम्मद) उनके पास प्रमाणों के साथ आया, (तो) कहते हैं—'यह साफ जादू (धोखा) है।" (६१ : १ : ६)

महात्मा मुहम्मद की प्रधानता

महात्मा मुहम्मद के पास ईश्वरीय सन्देश के आने का कोई समय निश्चित न था। वह सोते, बैठते किसी समय पर भी आ जाता था। एक समय जब महात्मा रजाई ओढ़े सोये थे उसी समय यह सन्देश आया।

"हे लिहाफ (ओढ़ना) में लिपटे, उठ और भय सुना।" (७४ : १ : १,२)

निम्नलिखित वाक्य भी इस्लाम में महात्मा मुहम्मद की प्रधानता प्रदर्शित करते हैं—

"हे विश्वासियो ! ईश्वर और प्रेरित की आज्ञा मानो।" (४ : ८ : ६)

"विश्वासी (मुसल्मान) वह हैं, जो ईश्वर और प्रेरित पर विश्वास लाये हैं, और शंका नहीं करते।" (४६ : २ : ५)

महात्मा मुहम्मद अन्तिम भगवद्दूत

"जो कोई परमेश्वर और उसके प्रेरित की आज्ञा न माने, उसको सर्वदा के लिये नरक की अग्नि है।" (७२ : २ : ४)

महात्मा मुहम्मद के आचरण को आदर्श मानकर उसे दूसरों के लिये अनुकरणीय कहा गया है।

"तुम्हारे लिये प्रभु-प्रेरित का सुन्दर आचरण अनुकरणीय है।" (३३ : ३ : १)

यह कह ही आये हैं, कि अरब के लोग उस समय एकदम असभ्य थे। उन्हें छोटे छोटे से लेकर बड़े बड़े आचार और

सभ्यता-सम्बन्धी व्यवहारों को भी बतलाना पड़ता था। उनको गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बड़े-छोटे के सम्बन्ध का भी विशेष विचार नहीं था। महात्मा मुहम्मद को गुरु और प्रेरित स्वीकार करने पर उनका यही मुख्य सम्बन्ध मुसल्मानों के साथ है, न कि भाईबन्दी चचा भतीजा वाला पहिला सम्बन्ध। यथा—

'मुहम्मद तुम पुरुषों में से किसी का बाप नहीं, वह प्रभु-प्रेरित और सब प्रेरितों पर मुहर (अन्तिम) है।' (३३ : ५ : ६)

'मुसल्मानों का उस (मुहम्मद) के साथ प्राण से भी अधिक सम्बन्ध है; एवं उसकी स्त्रियाँ तुम्हारी (मुसल्मानों की) माताएँ हैं।

महात्मा मुहम्मद के विवाह

कितने ही नये मुसल्मान महात्मा पर अपने मुसल्मान हो जाने का आभार (इहसान) रखते थे। जिसपर कहा गया है—

"तुझ पर इहसान रखते हैं कि मुसल्मान हो गये, कह—मुझपर इहसान मत रखो, यह परमेश्वर ने तुम्हारे ऊपर उपकार किया है, कि तुमको सच्चा रास्ता दिया।" (४९ : २ : ७)

महात्मा मुहम्मद का प्रथम विवाह श्री खदीजा के साथ २५ वर्ष की अवस्था में हुआ था। विवाह के अनन्तर वह २५ वर्ष तक जीवित रहीं। मदीना-प्रवास से ३ वर्ष पूर्व, जबकि महात्मा ५० वर्ष के हो गये थे, उनका स्वर्गवास हुआ। इस्लाम की शिक्षा सर्व प्रथम इन्होंने स्वीकार की। कई कारणों से मजबूर होकर महात्मा को (प्रायः) दश विवाह और करना पड़ा, किन्तु यह सब ५३ वर्ष की अवस्था के बाद हुए। यहाँ पर महात्मा के पास एक 'ज़ैद' नाम का दास रहता था। उसके मुसल्मान हो जाने पर उन्होंने, इतना ही नहीं कि उसे दासता से मुक्त कर दिया, प्रत्युत अपना पोष्यपुत्र बनाकर उसका विवाह अपनी फूफी, 'उमैया' की लड़की 'ज़ैनब' से करा दिया। 'ज़ैनब' की

बड़ी बड़ी इच्छाओं और उच्च-वंश के अभिमान ने दासता से मुक्त जैद के साथ पटरी न जमने दी। दोनों में बराबर झगड़ा होने लगा। अनेक बार 'जैद' ने सम्बन्ध-विच्छेद (=तिलाक़) करना चाहा, किन्तु बार बार महात्मा 'अपनी स्त्री को अपने पास रहने दे और भगवान् से डर'—कहकर उसे रोक दिया करते थे, यद्यपि बार बार की परीक्षा ने उन्हें निश्चित कर दिया था, कि उन दोनों का मन मिलना कठिन है, किंतु सम्बंध-विच्छेद से उत्पन्न होनेवाली कठिन समस्या को देखकर वह इसी तरह टालते जाते थे। 'ज़ैनब' और उसके भाई मुसल्मान होने के कारण '.कुरैशियों' के कोप-भाजन हुए थे, और उन्होंने भी घरबार छोड़ 'मदीना' में प्रवास किया था। तिलाक़ देने पर 'ज़ैनब' का विवाह होना कठिन था। मुसल्मान होने से मुसल्मान-भिन्न के साथ संबंध हो नहीं सकता था, और मुसल्मानों में भी .कुरैश के वंश की प्रतिष्ठा के ख्याल से किसी अकुरैशी से विवाह अयुक्त था। यद्यपि इससे बहुत पहिले ही यह आदेश मिल चुका था—

"भगवान् ने पोष्यपुत्रों को तुम्हारा पुत्र नहीं बनाया है, यह तुम्हारी कपोल-कल्पना है।" (३३ : १ : ४)

इससे 'ज़ैनब' के साथ व्याह करने में, इस्लामधर्म के अनुसार कोई बाधा न थी। परन्तु महात्मा लोकापवाद से डरते थे लोग कहेंगे,—मुहम्मद ने अपनी पतोहू घर में रख ली। किन्तु इस्लाम के प्रवर्तक की यह निर्बलता बहुत हानिकर होती; यदि वह उस शिक्षा को लोकापवाद से डरकर छोड़ देते; जिसके कि वह स्वयं प्रचारक थे। फिर तो उनके अनुयायी क्यों न वहिर्मुख हो जाते। इसलिये .कुरान ने आदेश दिया—

महात्मा मुहम्मद की पत्नियाँ

'भगवान् से डर, तू जो कुछ अपने भीतर छिपाना चाहता था, भगवा उसे प्रकाशित करना चाहता है। तू मनुष्यों से

डरता है, किन्तु परमेश्वर से डरना ही सर्वोत्तम है। जब 'ज़ैद' की उससे इच्छा पूर्ण हो गई; तो हम (ईश्वर) ने उसे (ज़ैनब को) तुझे ब्याह दिया। यह इसलिये कि मुसल्मानों पर अपने मौखिक (पुत्रों) की स्त्रियों से ब्याह करने में हरज न हो'। (३३:५:३)

मदीना-प्रवास से पहिले महात्मा मुहम्मद ने एक ही ब्याह किया था। यह था श्री 'ख़दीजा' के साथ। वह प्रवास से ३ वर्ष पूर्व ही स्वर्गवासिनी हो गई थीं। बाक़ी बिवाह जो मदीना में आने पर ५३ वर्ष के बाद हुए उनको संख्या नव से अधिक बतलाई जाती है। नव प्रधान स्त्रियों के नाम ये हैं—

१—श्री 'आयशा' द्वितीय ख़लीफ़ा 'अबूबकर' की पुत्री। २—श्री 'हफ़सा', तृतीय ख़लीफ़ा 'उमर' की पुत्री। ३—श्री 'सौदा'। ४—श्री 'उम्म' सल्मा। ५—श्री 'ज़ैनब'। ६—श्री उम्म 'हबीबा'। ७—श्री 'जवेरिया'। ८—श्री 'मैमूना'। ९—श्री 'सफ़िया'।

इनमें से पहिली छ .कुरैश-वंश की थीं। आत्मरक्षा के लिये सब तरह से हारकर मुसल्मानों ने तलवार की शरण ली। उन्हें इस्लाम के शत्रुओं—.कुरैश और उनके साथी यहूदियों से अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, जिनमें अनेक मुसल्मान वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी स्त्रियाँ विधवा हो गईं। अब उनके पालन-पोषण का प्रश्न उठा। मुसलमानों की संख्या कम थी। और उतने ही में प्रबन्ध करना ठहरा। इस छोटी सी विरादरी के साथ सम्बन्ध की अनिवार्यता ने महात्मा मुहम्मद को और भी मजबूर किया कि वह उन विधवाओं और उनके सम्बन्धियों को सन्तुष्ट करने के लिये और भी शादियाँ करें। ऐसी ही कठिनाइयों में, 'ख़ुनैस' की विधवा 'हफ़सा', 'अब्दुल्ला' की विधवा 'जैनब', और 'अबू-सल्मा' की विधवा 'उम्म सल्मा' से बिवाह करना, 'उबैदुल्ला' को

विधवा उम्म 'हबीबा' से भी उपरोक्त कारणों से ही ब्याह हुआ। जो तीन बिवाह क़ुरैश-भिन्न वंशो में हुए, वह भी लड़ाकू सर्दारों को ब्याह-सम्बन्ध से शान्त रखने के लिये। श्री 'अबूबकर' के आग्रह ने 'आयशा' से ब्याह करने पर मजबूर किया। इन सब बातों से यह भली प्रकार पता लग सकता है, कि महात्मा ने यह अनेक ब्याह विषय-भोग के लिये नहीं, किन्तु, अन्य ही किन्हीं सदिच्छाओं से प्रेरित होकर किया। प्रेरित मुहम्मद के अपने ब्याह के विषय में कुरान की निम्न प्रकार की आज्ञा है।

नबी के बिवाह योग्य स्त्रियाँ

'हे प्रेरित, जिन पत्नियों को तूने स्त्रीधन[1] दे दिया; जो तेरे दाहिने हाथ की सम्पत्ति[2] हुईं; तेरे चचा, फूफी, मामा और मौसी की बेटियाँ, जिन्होंने तेरे साथ प्रवास किया, तथा कोई भी मुसल्मान स्त्री जिसने अपने को, नबी (प्रेरित) के लिये अर्पण कर दिया, और नबी तू उनके साथ ब्याह करना चाहे; यह सब तेरे लिये विहित हैं।' (३३ : ६ : ६)

महात्मा मुहम्मद की विलास-शून्यता

महात्मा मुहम्मद का जीवन कितना भोग-विलास से शून्य था, इसका पता, उस वाक्य से लगेगा जिसमें कहा गया है।—

'हे नबी; अपनी स्त्रियों से कह—यदि तुम सांसारिक जीवन और उसके भोग-विलास को चाहती हो तो, आओ तुम्हें कुछ देकर, भली प्रकार विदा कर दूँ। और यदि तुम परमेश्वर उसके नबी और अन्तिम दिन को चाहती हो, तो अवश्य ईश्वर ने ऐसी सदाचारिणी स्त्रियों के लिये उत्तम फल निश्चित कर रखा है।'

(३३ : ४ : १, २)

१—वह धन जो ब्याह के समय पुरुष स्त्री के लिये स्वीकार करता है; और जिसे पुरुष के अपराध से ब्याह सम्बन्ध टूटने पर स्त्री को दे देना पड़ता है। २—युद्ध में दासी बनाई गई स्त्रियाँ।

जब कई एक विजयों के लूट के माल से मुसल्मान लोग सम्पत्तिशाली हो गये थे। उनके घर सुख-सामग्रियों से पूर्ण थे। उनकी स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित रहा करती थीं। घर का काम-काज करने के लिये उनके पास युद्ध के बन्दीास-दासी भी मौजूद थे। इस प्रकार आनन्द करती अपनी पड़ोसिनों को देख-कर, महात्मा मुहम्मद की स्त्रियों में भी उसके लिये इच्छा पैदा होना स्वाभाविक था। इसी पर उपरोक्त क़ुरान का वाक्य कहा गया है। उन्हें औरों की अपेक्षा भोग-सामग्रियों से ही केवल वञ्चित नहीं किया गया, बल्कि अपराध करने पर लिखा है

नबी की स्त्रियों का उत्तरदायित्व

"हे नबी की स्त्रियो! जो कोई तुममें से अपराध करे, उसको दूनी दण्डयातना है।" (३३ : ४ : ३)

सचमुच नबी और उसके परिवार को अपने अनुयायियों के आदर्शभूत होने के कारण, सब प्रकार से उसके योग्य होना आवश्यक है।

"हे नबी की पत्नियो तुम सर्वसाधारण स्त्रियों की भाँति नहीं हो" (३३ : ४ : ४)। यहाँ उनकी जवाबदेही को भी स्पष्ट कर दिया है।

स्त्रियों से विवाद

उस समय अरबनिवासियों में स्त्रियाँ बहुत तुच्छ गिनी जाती थीं। वह उनके लिये विलास-सामग्री और काम करने की मशीन थीं। उनको अधिकार नहीं था, कि पुरुष की किसी बात का उत्तर दें। किन्तु हज़रत ने अपनी स्त्रियों को बहुत कुछ स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। कहावत है कि एक समय 'उमर' की पत्नी ने अपने पति को कुछ सलाह दी। अरब की प्रकृति के अनुसार 'उमर' ने कहा—'इससे तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं।' पत्नी ने कहा—

"तुम्हारी लड़की 'हफ्सा' क्यों हज़रत को उत्तर पर उत्तर देती जाती है, यहाँ तक कि वह अप्रसन्न तक हो जाते हैं, किन्तु तुम नहीं चाहते कि मैं ऐसे विषयों में तुम्हें कुछ परामर्श दूँ।" यह सुनकर उमर को 'हफ़्सा' पर बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने तुरन्त जाकर 'हफ्सा' से ऐसा न करने को कहा। जब यही परामर्श उन्होंने नबी की एक दूसरी स्त्री, 'उम्मसल्मा' को देना चाहा, तो उसने रूखा सा उत्तर दिया—

आयशा और हफ़सा का नबी से झगड़ा

'नबी की स्त्रियों की बातों में तुम्हें दखल देने का कुछ अधिकार नहीं।' महात्मा की स्त्रियों को सचमुच दूसरी स्त्रियों से बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वह उनकी बातों का भी बड़ा ख़्याल किया करते थे। एक समय की बात है, कि हज़रत ने बिना बारी के 'ज़ैनब' के घर में जाकर मधु खाई। इसे आयशा और हफ़्सा सहन न कर सकीं। उन्होंने चिढ़ाने के लिये महात्मा से कहना आरम्भ किया—'मधु की गन्ध आती है।' इस पर हज़रत ने मधु का सर्वदा के लिये शपथपूर्वक परित्याग कर दिया। किन्तु कहीं मुसल्मान लोग भी मधु को निषिद्ध न समझ लें, इसलिये उन्हें आदेश हुआ—

"हे नबी! जो तेरे लिये विहित है, क्यों तू उसे निषिद्ध करता है? तू अपनी पत्नियों की प्रसन्नता चाहता है? ईश्वर कृपालु और क्षमाशील है। अपनी शपथों को तोड़ डालना, ईश्वर तुम्हारा कर्त्तव्य ठहराता है।" (६६ : १ : १, २)

बहुविवाह का दुष्प्रभाव एवं सपत्नी-कलह प्रसिद्ध ही है। ज़रा एक पत्नी से अधिक वार्तालाप होते देखा नहीं, कि दूसरी जलने लगती थी। एक बार 'आयशा' और 'हफ़्सा' ने ऐसा ही

विवाद उठाया; और वह यहाँ तकबढ़ा कि अन्त में क़ुरान को इसके बारे में उपदेश देना पड़ा—

'अगर तुम दोनों प्रभु के पास पश्चात्ताप करती हो, तो तुम्हारे हृदय विनम्र हो गये। परन्तु यदि तुम दोनों उस (मुहम्मद) पर चढ़ाई करो, तो निश्चय परमात्मा, जिब्रैल[1], साधुशील मुसल्मान और देवदूत उसके सहायक उसकी पीठ पर हैं। यदि अभी नबी तुम्हें परित्याग कर दे, तो इसके बदले परमात्मा उसे तुमसे अच्छी पत्नियाँ देगा, जो कि आज्ञाकारिणी, विश्वासिनी, अभ्युत्थानशीला, पश्चात्तापकर्त्री, सेविका, व्रत करनेवाली और कुमारी होंगी।' (६६ : १ : ३, ४)

बिना बुलाए घर में जाना निषिद्ध

'नबी की स्त्रियाँ तुम्हारी माताएँ हैं', यह पहिले लिखा जा चुका है। इस वाक्य ने ही, प्रेरित की विधवा स्त्रियों से मुसल्मानों का विवाह होना अयुक्त ठहराया।

उस समय के साधारण अरब-निवासियों के दुराचार को देखते हुए, मुसल्मानों के आचरणों पर विशेष ध्यान दिया गया। अपने आचरण से इस्लाम के महत्व का प्रचार करना प्रत्येक मुसल्मान का कर्तव्य ठहराया गया। उनका दूसरी स्त्रियों से अधिक सम्पर्क होना निषिद्ध कर दिया गया। स्वयं अपने गुरु के घर में भी अनावश्यक आना, रोक दिया गया। कहा है—

"भोजन के लिये, जब तक बुलाये न जाओ; नबी के घर में प्रविष्ट न हो। और जब भोजन कर चुको, तो चले जाओ। गपशप आपस में मत करते रहो, क्योंकि तुम्हारे इस व्यवहार से नबी को कष्ट पहुँचता था, किन्तु वह तुमसे कहने में संकोच करता था।" (३३ : ७ : १)

१—देवदूतों में प्रमुख।

इस विन्दु में संक्षेप से उन बातों को एकत्र करने का प्रयत्न किया है, जिनका सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद से विशेषकर है। यहाँ इस विषय में एक और बात का निर्देश कर देना आवश्यक है, वह है—युद्ध की लूटी संपत्तियों का विभाग। प्रत्येक ऐसी संपत्ति का पञ्चमांश नबी के पास जाता था, जो परमेश्वर, प्रेरित के सम्बन्धी, अनाथों, दरिद्रों और पथिकों के लिये व्यय किया जाता था।' (८ : ५ : ४)

पञ्चम विन्दु

पुरानी कथाएँ

"यह (वह) बस्तियाँ हैं, जिनका वृत्तान्त तुझे (हम) सुनाते हैं।" (७ : १३ : ३)

"सो तू (मुहम्मद) कथा वर्णन कर, शायद वह विचार करें।" (७ : २२ : ५)

जैसा हम ऊपर लिख आये हैं; कि क़ुरान का एक विशेष भाग शिक्षाप्रद इतिवृत्तों और कथाओं से पूर्ण है। उपरोक्त वाक्य इसके साक्षी हैं। क़ुरान में वर्णित सभी विषयों का सामान्य ज्ञान, इस क़ुरानसार की रचना से अभिप्रेत है। अतः यहाँ पर उन कथाओं का थोड़ा सा वर्णन कर दिया जाता है। इनमें से अनेक कथाएँ कुछ घटा-बढ़ाकर वही हैं, जो बाइबल में आई हैं।

आदम

१—महात्मा आदम—"जब परमात्मा ने फ़रिश्तों से कहा, कि मैं दुनियाँ में एक नायब (सहायक) बनानेवाला हूँ, (तो वह) बोले—क्या उसमें तू ऐसों को बनायेगा, जो ख़ून और कलह करेंगे। हम तेरी स्तुति करते हैं। (भगवान् ने) आदम को सम्पूर्ण नाम (ज्ञान) सिखाये, फिर उसे फ़रिश्तों (देवदूतों) को दिखाकर कहा, यदि तुम सच्चे हो तो हमें इन (वस्तुओं) के नाम बताओ। (फ़रिश्तों ने) कहा—जो कुछ तूने सिखाया है उसके अतिरिक्त हमको मालूम नहीं.... । (तब प्रभु ने) कहा—हे आदम; इनको इनके नाम बता दे। फिर जब उसने उन्हें बता

दिया, तो (परमेश्वर ने) कहा—क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था, कि मैं बहुत सी बातें ऐसी जानता हूँ, जिसे तुम नहीं जानते। परमात्मा ने फ़रिश्तों से आदम को प्रणाम करने को कहा, सबने तो किया; किन्तु, (सबके सर्दार) इब्लीस ने नहीं किया (२ : ४ : १-५)। इब्लीस ने कहा, मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं आग से बना और यह (आदम) मिट्टी से (३८ : ५ : १४)। फिर इब्लीस ने ईश्वर के मार्ग को रोककर (लोगों को) पथभ्रष्ट करने के लिये धमकी दी। (इस पर) प्रभु ने कहा—उस (शैतान-इब्लीस) को (स्वर्ग से) निकाला जायगा और उसकी बात माननेवालों को नर्क में डाला जायगा (७ : २ : ५-७)। फिर भगवान् ने आदम और उसकी स्त्री को स्वर्गोद्यान में रहने की आज्ञा दी, और यह भी कहा, कि जो चाहे सो खाना; किन्तु अमुक वृक्ष के समीप न जाना (२ : ४ : ६)। (फिर) शैतान ने उस (आदम) की स्त्री को बहकाया……(२ : ४ : ७)। अमर या फ़रिश्ता न हो जाओ इसीलिये (खुदा ने) फल खाना मना किया है…(७ : २ : ९)।…मैं तुमको अमर-वृक्ष और अजर-राज्य बता दूँ (२० : ७ : ५)। फल खाने पर उनके अवगुण खुल गये, और वह पत्ते से (अपने शरीर को) ढाँकने लगे। फिर ईश्वर ने कहा—क्या हमने तुमको मना न किया था, कि शैतान तुम्हारा शत्रु है। सो उतरो…(७ : २ : ९, ११-१३)। (इस प्रकार शैतान ने उन दोनों को)…स्वर्ग से निकलवा दिया (२ : ४ : ७)। जब काम पूरा हो चुका तो शैतान ने कहा—परमेश्वर ने ठीक अभिवचन दिया, किन्तु मेरी बात झूठी थी। (यद्यपि) मेरा शासन तुम पर नहीं था, किन्तु मैंने बताया और तुमने मान लिया, अतः मुझे अपराधी मत बनाओ, किन्तु अपने को ठहराओ।"

(१४ : ४ : १)

नूह

२—महात्मा नूह—"(परमात्मा ने) नूह को उसकी जाति के पास भेजा; कि (उस पर) यातना पहुँचने से पहिले उन्हें डरा। नूह ने कहा—हे मेरी जाति (वालो !) मैं डरानेवाला हूँ। परमेश्वर की पूजा करो उससे डरो, और मेरा कहा मानो। (अपना प्रयत्न निष्फल देख) नूह ने कहा—हे प्रभो ! मैं रात-दिन (अपनी) जाति को बताता रहा, किन्तु भागने के अतिरिक्त उनके पास मेरी पुकार न पहुँची (७१ : १ : १३) उन्होंने तो कहा—अपने ठाकुर—'बद्द', 'सुबाअ', 'यग़ूस', "यऊक़' और 'नस्र' को न छोड़ना। (नूह) बोला—प्रभो ! नास्तिकों का एक घर भी भूमण्डल पर न छोड़ना; नहीं तो वह तेरे भक्तों को बहकावेंगे (७१ : २ ; ६, ७)। (नूह) अपनी जाति में ६५० वर्ष रहा[१] (२६ : २ : १)।"

नूह के विषय में एक और स्थान पर कहा है—"नूह को उसकी जाति के पास भेजा। (जाति ने) कहा—हम तुझे भूल में देखते हैं। (नूह) बोला—मैं भूल में नहीं हूँ, किन्तु जगदीश्वर का प्रेरित हूँ। फिर (उसकी जाति ने) झुठलाया; तब हमने उसको और उसके साथियों को नाव में बचा लिया और जो झुठलाते थे उन्हें डुबा दिया।" (७ : ८ १-३, ६)

इब्राहीम

३—महात्मा 'इब्राहीम'—'जब (बालक) इब्राहीम ने अपने बाप 'आज़र' से कहा—क्या मूर्ति को भगवान् करके ग्रहण करते हो ? मैं देखता हूँ, तुम्हारा (सारा) वंश बहका हुआ है। उसके

---

१ (७१ : १ : १-३, ५, ६)। १ यहूदियों और ईसाइयों के माननीय ग्रन्थ बाइबल की 'उत्पत्ति' (Genesis) पुस्तक (७ : ६, २८) में भी यह वर्णन है।

विश्वास के लिये इस प्रकार (प्रलोभनार्थ शैतान ने) भूमि और आकाश का राज्य दिखाया। अन्धेरी रात में तारा देखकर (इब्राहीम) बोला—यह मेरा ईश्वर है, फिर जब (वह) अस्त हो गया तो बोला—मुझे अस्त होना प्रिय नहीं। फिर चन्द्रमा को कहा (यह) मेरा ईश्वर है। फिर महान् सूर्य को। (अन्ततः सबकी अस्थिरता को देख, बोला—मैंने अपने मुँह को उसकी ओर किया, जिसने भूमि और आकाश को रचा है (६ : ९ : ५) १०)। (उसने) अपने वंश से कहा—क्या पूजते हो ?" फिर (मन्दिर में) घुसकर उनकी मूर्तियों से पूछा—तुम क्यों नहीं खाते। क्या हुआ है तुम्हें जो नहीं बोलते। (तदनन्तर) दाहिने हाथ से उन्हें तोड़ने लगा। तब लोग घबड़ाये हुए दौड़कर आये। (इब्राहीम ने उनसे पूछा—) अपने हाथ के बनाये हुओं को क्यों पूजते हो ? इन्हें चुनकर आग की ढेर में डाल दो। इब्राहीम के उस आचरण को देखकर उसके जातिवाले) दाँवघात लगाने लगे ; किन्तु हमने उन्हें ही नीचा दिखाया" (३७ : ३ : ११, १७-२१, २३, २४)

"इब्राहीम के मेहमानों (पाहुनों) ने भीतर आ सलाम किया। (तब वह) घर से घी में तला बछड़ा लाया। (पूछा—) क्या तुम खाते नहीं ? इब्राहीम को डरा देख उन्होंने कहा—डर मत, हम (तुझे) एक ज्ञानी पुत्र (होने) का शुभ समाचार देते हैं। (इसे सुन) उसकी स्त्री ने सिर धुनकर कहा—(५१ : २ : १-६) मैं बुढ़िया और मेरा पति बूढ़ा !! (११ : ७ : ४)।"

"(ईश्वर-दूत) बोले—शक्तिमान्, ज्ञानी, (महाप्रभु) ने ऐसा ही कहा है (५१ : २ : ७)।"

"(हमने) उस (इब्राहीम) को 'इसहाक' और इस्माईल, (दो) सन्तान दिये" (२९ : ३ : ५)

"स्वप्न में (प्रभु के नाम पर) पुत्र को बलिदान चढ़ाने की (उसे) इच्छा हुई। पुत्र ने भी बाप की इच्छा (सुन) स्वीकार कर कहा—मुझे ईश्वरीय इच्छा से धैर्य मिलेगा। जब इब्राहीम ने उसे लिटाया तो परमेश्वर ने कहा—तूने अपने स्वप्न को सच कर दिखाया। (अब) इसके बदले एक बड़े पशु की बलि दे।"

(३७ : ३ : २७-३३)

"जब इब्राहीम ने पूछा—प्रभो, तू कैसे मृतकों को पुनरुज्जीवित करेगा ? (प्रभु ने) कहा—चार पक्षी पकड़कर उनका एक एक टुकड़ा, प्रत्येक पर्वत पर फेंक दे, फिर उन्हें बुला, वह (तेरे पास) दौड़ते आ जायँगे।" (२ : ३५ : ३)

लूत की कथा

४. महात्मा लूत—"ईश्वर के दूत जब 'लूत, के पास गये, तो वह डरा। उसके अस्वाभाविक व्यभिचारशील जातिवाले उनके पास दौड़ आये। लूत ने उनसे कहा कि भाई, यह करस्पर्श-रहित मेरी लड़कियाँ मौजूद हैं, इनसे अपनी इच्छा पूर्ण करो। ईश्वर से डरो और मुझे अपने अतिथियों में बदनाम न करो। उन्होंने कहा—हमें तेरी लड़कियों से कोई मतलब नहीं, हम क्या चाहते हैं, यह तू जानता ही है। अतिथियों ने लूत को भयभीत देख कहा—लूत ! हम ईश्वर के दूत हैं, तू डर मत। आज रात में ही घर छोड़ निकल जा, और पीछे फिर कर देखना नहीं। तेरी स्त्री अभाग्य की मारी पीछे मुड़कर देखेगी और जो पड़ना है, उसपर पड़ेगा। दूसरे दिन प्रभु का कोप हुआ और दूतों ने उस बस्ती को पलट (तर का ऊपर) कर दिया, तथा उस पर पत्थर बरसाया।" (११ : ७ : १०-१४)

दूसरे स्थान पर यही वर्णन इस प्रकार आया है—

"लूत ने अपनी जाति को कहा—क्या ऐसी निर्लज्जता करते

हो, जिसे तुमसे पहिले संसार में किसी ने न किया। तुम कामातुर हो स्त्रियों को छोड़ मर्दों पर दौड़ते हो। जातिवालों ने कहा— निकालो इनको, यह बड़े पुण्यात्मा बनना चाहते हैं। भगवान् ने एक स्त्री के अतिरिक्त जो पीछे रह गई थी; उसके सारे कुटुम्ब को बचा लिया।" (२७ : ४ : ८-११)

एक और स्थान पर लूत का उपदेश इन शब्दों में है—

"उनके भाई लूत ने कहा—मैं तुम्हारे लिये विश्वासपात्र (प्रभु) प्रेरित हूँ। सो प्रभु को डरो और मेरा कहा मानो। क्या तुम संसार के मर्दों पर दौड़ते हो, और तुम्हारे ईश्वर ने जिन्हें तुम्हारे लिये बनाया, उन अपनी स्त्रियों को छोड़ते हो; तुम मर्यादा के उल्लंघन करनेवाले हो।" (२६ : ९ : ३, ६, ७)

यूसुफ़ की कथा

५—यूसुफ़—"बालक यूसुफ़ ने बाप (याक़ूब) से कहा— मैंने ११ तारे, चन्द्रमा और सूर्य को अपने लिये प्रणाम करते देखा। (पिता) बोला—बेटा! अपने स्वप्न को अपने भाइयों से मत कहना, अन्यथा वह धोखा देंगे। इस प्रकार (ज्ञात होता है) तेरा प्रभु तुझ पर कृपा करेगा और तुझे (रहस्य की) बातें सिखावेगा, एवं तुझ पर तथा याक़ूब-सन्तति पर अपनी प्रसन्नता पूर्ण करेगा; जैसा कि उसने तेरे दो बाप-दादों इस्माईल, और इसहाक़ पर किया (१२ : १ : ४-६)। (एक समय) उसके भाइयों ने मंत्रणा की कि 'यूसुफ' और उसका भाई ('बनि-अमीन') हमारे बाप को हमसे अधिक प्रिय हैं। इसलिये आओ उन्हें एक दिन मारकर फेंक दिया जाय। तब एक ने कहा— उसको मारो मत, अन्धे कुएँ में डाल दो, जिसमें कोई मुसाफ़िर उठा ले जाय। उन्होंने बाप को फुसलाकर किसी प्रकार यूसुफ़ को शिकार खेलने के लिये अपने साथ बन में जाने पर राज़ी

कर लिया; बन में ले जाकर उसे कुएँ में ढकेल दिया और उसकी कमीज़ को लोहू में रंग कर बाप के सामने रख कर कहा—उसे भेड़िया खा गया। उधर (किसी) यात्री-समुदाय के एक आदमी ने पानी खोजने के समय यूसुफ़ को कुएँ से निकाला; और उसे एक मिश्री सौदागर के हाथ बेच डाला।" (१२ : २ : २-१४)

"मिश्री खरीदार ने इस सुन्दर बालक को एक स्त्री (मिश्र के राजमंत्री की स्त्री) के हाथ बेंच दिया। उसने भली प्रकार रखा। जब वह युवा हुआ तो इसकी सुन्दरता पर उसका मन चलायमान हो गया; किन्तु यूसुफ़ ने बात स्वीकार न की। अज़ीज़ (मिश्र के राजमंत्री) की स्त्री अपने दास पर मोहित है, यह बात नगर में फैल गई। इस पर अज़ीज़ की स्त्री ने नगर की स्त्रियों को बुलाकर यूसुफ़ के सामने उन्हें खर्बूजा और छुरी दी। उनका चित्त यूसुफ़ की ओर इतना आकर्षित हुआ कि उन्होंने अपना हाथ काट डाला और कहा—'हाशल्लाहु! (आः भगवान्!), यह मनुष्य नहीं देवता है। 'यूसुफ़' से निराश होकर उस स्त्री ने उसे क़ैद की धमकी दी। यूसुफ़ बोला—जिधर मुझे बुलाती हो, उससे जेल मुझे प्रियतर है।' निदान यूसुफ़ जेल में डाल दिया गया। उसके साथ वहाँ दो और बन्दी थे। एक रात दोनों ने स्वप्न में देखा और 'यूसुफ़' से कहा। 'यूसुफ़' ने उसे—जिसने सिर पर रखी रोटी को जानवरों से खाई जाती देखा था—कहा, कि तू सूली पर चढ़ाया जायगा, और तेरा सिर जानवर नोचेंगे। दूसरे से—जिसने शराब निचोड़ते देखा था—कहा, तू राजा को शराब पिलावेगा और उसका प्रिय दास होगा, किन्तु पदारूढ़ होकर मुझे स्मरण रखना। 'यूसुफ़' का स्वप्न-विपाक ठीक निकला, किन्तु राजा का सेवक होकर वह जीवित बन्दी उसे भूल गया। 'यूसुफ़' कितने हीं वर्ष जेल में रहा।" (१२ : २-५)

"एक समय बादशाह ने स्वप्न देखा कि, सात मोटी गायों को

सात दुबली (गाएँ) खाती हैं, सात बालें हरी और सात सूखी हैं। राजा ने स्वप्न विचारने के लिये सगुनियों को बुलवाया। उसी समय उसके उस भूतपूर्व बन्दी नौकर ने 'यूसुफ़' की प्रशंसा की। 'यूसुफ़' ने आकर बताया कि सात वर्ष तुम्हारे राज्य में खूब फसल होगी और सात बरस तक पानी न बरसेगा। इसलिये अनाज काटकर उसे बालियों में ही पड़ा रहने दो। राजा ने प्रसन्न हो यूसुफ़ की निरपराधता का पता पा, .क़ैद से छुड़ा, उसे अपना काम सौंपा। अकाल के समय यूसुफ़ ही के हाथ में अनाज आदि का अधिकार था। एक समय उसके भाई भी अकाल के मारे उसके यहाँ अनाज लेने आये। बोरी तैयार होने पर उसने उनसे कहा—जब तक तुम्हारा छोटा भाई 'बनि-अमीन' न आयेगा, तुम माल न ले जा सकोगे। फिर, किसी प्रकार बाप को राज़ी, करके वह बनि-अमीन को वहाँ लाये। उसकी तो इच्छा 'बनि-अमीन' को अपने पास रखने की थी। मिश्र के राजा के न्याय के कारण वह और प्रकार से अपने पास रख न सकता था। इसलिये उसने युक्ति सोच 'बनि-अमीन' की बोरी में लोटा रखवा उसे चोर बनाकर पकड़ लिया। उसके भाइयों ने बहुत छुड़ाने का प्रयत्न किया। अन्त में यूसुफ़ ने उनकी करनी को कह उन्हें लज्जित कर अपने आपको प्रकट कर दिया। अपने वियोग में रोते-रोते अन्धे हो गये बाप के पास उसने यह कह अपना कुर्ता भेजा कि इसके मुँह पर रखते ही उसकी आँखें अच्छी हो जायँगी। और यह भी कहा—घर सहित तुम सब यहाँ ही चले आओ। उसके आने के बाद बूढ़े माता-पिता को सिंहासन पर बैठा सबने प्रणाम किया।" (१२ : ६-११)

मूसा की कथा

६—महात्मा मूसा—मिश्र का 'फ़रऊन'[1] पैलस्ताईन (फ़िल-

१—'फ़रऊन' या 'फर्वा' मिश्र के सम्राटों की पदवी थी।

स्तीन) विजय कर, वहाँ के बहुत से निवासियों को बन्दी बना अपने देश में ले गया। पीछे राजाज्ञा हुई कि बन्दी बनाये इन इस्राईल की सन्तानों के कोई भी लड़के न बचने पावें, किन्तु लड़कियाँ न मारी जायँ। मूसा के उत्पन्न होने पर उसकी मां ने बच्चे को मारे जाने के डर से नहर में डाल दिया। वह सन्दूक फरऊन की स्त्री के हाथ लगी। उसने इस बालक को बड़े प्रेम से, संयोगवश उसकी माँ को ही दाई रख, पाला। युवा होने पर एक मिश्री पुरुष से एक यहूदी को पिटते देख, उसने उस मिश्री को मार डाला; और आप भागकर, 'मदैन' में चला गया। वहाँ उसने व्याहकर, अपने श्वसुर के घर में १० वर्ष तक व्याह के बदले की गई प्रतिज्ञा के अनुसार, सेवा की। जब अवधि पूरी होने पर वह परिवार को ले चला तो एक पर्वत पर उसने आग देखी। वह अकेला पहाड़ पर गया। वहाँ दिव्यवाणी हुई—मैं जगदीश्वर हूँ, अपने डंडे को भूमि पर डाल। जब उसने उसे भूमि पर डाल दिया, तो वह फनफनाता साँप हो गया। मूसा डरा। प्रभु ने कहा—आगे आ मूसा ! डर नहीं। अपने हाथ को बगल में दे। वह चमकीला निकल आया। भगवान से इस प्रकार दो प्रमाणभूत चमत्कार पाकर, प्रभु के आदेशानुसार वह 'फ़रऊन' के पास गया। (२८ : १-४)

'उसने 'फ़रऊन' के जादूगरों को अपने चमत्कार से जीता। रात को उसने इस्राईल-सन्तति को ले अपने देश की ओर प्रयाण किया। अपने दासों को इस प्रकार हाथ से निकलते देख, 'फ़रऊन' सेना-सहित पीछे दौड़ा। (मूसा ने) अपने डंडे के चमत्कार से समुद्र में मार्ग बना लिया[1] जिससे उसके जाति-वाले पार हो गये। जब फ़रऊन ने भी उसी तरह उतरना चाहा, तो मूसा के डंडे के उठाने से सब वहीं डूब गये। रास्ते में इस्रा-

१—(२६ : ४ : ११)

ईल-संतति को ईश्वर की ओर से दिव्य भोजन—'मन्न' 'सल्वा'—आता था। जब वह भगवान् से बात करने और उसके आदेश लेने के लिये गया था और अपने भाई हारून के जिम्मे इस्राईल-संतति को कर गया था; तो इधर लोगों ने 'सामरी' के बहकाने से, बछड़ा बनाकर पूजना आरम्भ किया, मूसा के क्रोधित होने पर पीछे 'हारून' ने कहा—'हे मेरी माँ के जने! न मेरी दाढ़ी पकड़ न सिर। मैं डरा कि, तू कहेगा तूने बनी इस्राईलसंतति में फूट डाल दी। सामरी ने जिब्राईल की धूलि से बछड़े में बोलने की शक्ति तक उत्पन्न कर दी थी।" (२० : ३ : ५)

"जब मूसा भगवान के पास बात करने गया था, तो उसने दर्शन माँगा। भगवान ने कहा—तू न देख सकेगा। अच्छा पहाड़ की ओर देख। उस तेज को देख वह मूर्छित हो गिर पड़ा। ईश्वर ने अपने आदेश को पट्टियों पर लिखकर उसे दिया।" (७ : १६–१८)

७—दाऊद—"हमने पर्वतों को दाऊद के अधीन कर दिया जो स्तुति करते हैं, एवं पक्षियों को भी। हमने तुम्हारे लिये उसे कवच बनाने की कारीगरी सिखा दी, जिससे युद्ध में तुम्हारा बचाव हो।" (२१ : ६ : ४,५)

यही कुछ भेद के साथ—(३४ : २ : १,२)

"हमारे (प्रभु के) सेवक दाऊद को स्मरण कर, जिसके हाथ मे बल था और जो अनुरक्त था। हमने पर्वतों को उसके अधिकार में दे दिया, जो प्रातः और सायं स्तुति करते और सारे पक्षी एकत्र हो उसके अनुरक्त होते थे। उसे हमने राज्यबल, चातुर्य और बात के निर्णय की शक्ति प्रदान की। तुझे (उन) वादियों की सूचना मिली है, जो दीवार कूदकर मन्दिर में आये। जब वह दाऊद के पास आये, तो वह उनसे घबराया। उन्होंने

कहा—भयभीत मत हो। हम दोनों वादी-प्रतिवादी हैं। एक ने दूसरे पर अत्याचार किया है, सो हमारा न्याय कर, उपेक्षा न कर, तथा हमें सीधा मार्ग बता। यह मेरा भाई है, इसके पास ९९ दुम्बा भेड़े हैं, और मेरे पास एक, यह कहता है कि उसे भी मुझे दे दे। इसके लिये बलात्कार करता है। (दाऊद) बोला—अपनी भेड़ों में मिलाने के लिये, तेरी भेड़ को माँगकर इसने तुझपर बलात्कार किया ···। 'दाऊद' ताड़ गया कि हम (परमात्मा) ने उसकी परीक्षा ली है, फिर उसने अपने प्रभु से क्षमा माँगी, दण्डवत की और वह अनुरक्त हुआ। फिर हमने उसे क्षमाप्रदान की, उसके लिये हमारे पास उत्तम पद और उच्च स्थान है। हे दाऊद ! हमने तुझे पृथ्वी पर अपना अधिकारी बनाया। (३८ : २ : २-१२)

दाऊद की ९९ स्त्रियाँ थी। उसने अपने पड़ोसी की एक स्त्री पर मुग्ध हो उसे भी जबर्दस्ती लेना चाहा। उसने इसके लिये उस स्त्री के पति को युद्ध पर भेज दिया जहाँ वह मारा गया। फिर उससे उसने व्याह कर लिया। दाऊद ने नियम किया था—एक दिन दर्बार करना, एक दिन भगवद्भजन करना, एवं एक दिन अन्त:पुर में रहना। यह पिछला ही दिन था, जिस दिन, द्वार से गमनागमन निरुद्ध होने से, दो देवदूत दीवार फाँदकर, उसके उपरोक्त अनुचित कृत्य को अन्यायपूर्ण बतलाने के लिये आये थे। यही वृत्तान्त ऊपर कहा गया है।

ऐसे ही बहुत से यहूदी, ईसाई महात्माओं, और यवन 'सिक़न्दर', हब्शी 'लुक़मान' आदि अन्य भी प्रसिद्ध व्यक्तियों का वर्णन क़ुरान में मिलता है। विस्तार-भय से उनको यहाँ नहीं उद्धृत किया जा सकता।

———

षष्ठ विन्दु

'परमेश्वर, फरिश्ते, शैतान'

दुनिया के सारे धर्म प्रायः सारे पदार्थों को दो श्रेणियों में विभक्त करते हैं, अर्थात् जड़ और चेतन। जड़ का वर्णन स्थान स्थान पर पाठक स्वयं पढ़ेंगे। यहाँ चेतन का वर्णन किया जाता है। चेतन के भी दो भेद हैं, ईश्वर, जीव। जीवों में ही फिरिश्ते, शैतान भी हैं।

ईश्वर

ईश्वर को 'क़ुरान' ने सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता माना है जैसा कि उसके निम्न उद्धरणों से मालूम होगा—

'वह (ईश्वर) जिसने भूमि में जो कुछ है (सबको) तुम्हारे लिये बनाया।' (२ : ४ : ६)

"उसने सचमुच भूमि और आकाश बनाया ''। मनुष्य को क्षुद्र वीर्य-विन्दु से बनाया। उसने पशु बनाये, जिनसे गर्म वस्त्र पाते तथा और भी अनेक प्रकार के लाभ उठाते हो, एवं उन्हें खाते हो।" (१६ : १ : ३-५)

"वह तुम्हारा ईश्वर सब चीजों का बनानेवाला है, उसके सिवाय कोई पूज्य नहीं।" (४ : ७ : २)

ईश्वर सब चीजों का स्रष्टा तथा अधिकारी है।" (३९:६:१०)

"निस्सन्देह ईश्वर, भूमि और आकाश को धारण किए हुए है, कि वह नष्ट न हो जायँ।" (३५ : ५ : ४)

"जो परमेश्वर मारता और जिलाता है।" (५३ : ३ : १२)

ईश्वर बड़ा दयालु है, वह अपराधों को क्षमा कर देता है—

"निस्सन्देह तेरा ईश्वर मनुष्यों के लिये उनके अपराधों का क्षमा करनेवाला है।" (१३ : १ : ६)

आस्तिकों ही पर नहीं काफिरों पर भी—

"इस बात में (हे मुहम्मद !) तेरा कुछ नहीं, चाहे वह (ईश्वर) उन (काफिरों) को क्षमा करे या उनपर विपद डाले, यदि वह अत्याचारी हैं।" (३ : १३ : ८)

ईश्वर सत्य है—

"परमेश्वर सत्य है।" (३१ : ३ : ११)

ईश्वर का न्यायकारी होना इस प्रकार कहा गया है—

"क़यामत के दिन हम ठीक तौलेंगे, किसी जीव पर कुछ भी अन्याय नहीं किया जायगा। चाहे वह एक सरसों के बराबर ही लाये हैं, किन्तु हमारे पास पूरा हिसाब रहेगा।" (२१: ४: ६)

निम्न वाक्य में अनेक ईश्वरीय गुण बतलाये गये हैं—

"परमेश्वर—जिसके सिवाय कोई ईश्वर नहीं—जीवन और सत् है। उसे नींद या औंघ नहीं आती। जो कुछ 'भूमि और आकाश में है उसी के लिये है। कोन है जो उसकी आज्ञा बिना उसके पास सिफारिश करे ? वह जानता है, जो कुछ उनके आगे या पीछे है; वह कोई बात उससे छिपा नहीं सकते, सिवाय इसके कि जिसे वह चाहे; विशाल भूमि और आकाश की कुर्सी, जिसकी रक्षा उसे नहीं थकाती; वह उत्तम और महान् है।" (२ : ३४ : २)

परमेश्वर माता-पिता-स्त्री पुत्रादि-रहित है—

"न वह किसी से पैदा हुआ, न उससे कोई पैदा है।" (११२ : १ : ३)

ईश्वर के मार्ग में खर्च करने का वर्णन इस प्रकार है—

"कौन है जो परमेश्वर को अच्छी क़र्ज़ दे, वह उसे कई गुना बढ़ायेगा।" (२ : ३२ : ३), (५७ : २ : १)

"निस्सन्देह दाता स्त्री-पुरुषों ने परमेश्वर को अच्छा क़र्ज़ दिया, उनका वह दुगुना होगा, और उनके लिये (इसका) अच्छा बदला है।" (५७ : २ : ८)

ईश्वर का रूप

कितने ही लोग इस्लाम में भी ईश्वर को साकार मानते हैं और इसके लिये निम्न कुरानवाक्यों का प्रमाण देते हैं—

'वह (परमेश्वर) जिसने छः दिन में भूमि और आकाश को बनाया, और फिर 'अर्श' पर विराजमान हुआ।' (५७ : १ : ४), (१० : १ : ३), (१३ : १ : २), (३२ : १ : ४)

साकार ईश्वर

कृपालु परमेश्वर 'अर्श' पर विराजमान हुआ।' 'उसका 'अर्श' जल पर है।' (२०: १: ५:)

'जो फिरिश्ते 'अर्श' को उठाये हैं और जो उसके पास अपने परमेश्वर की स्तुति करते हैं।' (४० : १ : ७)

'और जिस (क़यामत के) दिन 'फ़िरिश्ते' पास में रहेंगे और (उनमें से) आठ अपने ऊपर अपने परमेश्वर का 'अर्श' उठायेंगे।' (६९: १: १७)

'जिस (क़यामत के) दिन (परमेश्वर को) पिंडली खोली जागयी, और (लोग) प्रणाम के लिये बुलाये जायँगे, लेकिन वह (काफिर) समर्थ न होंगे'। (६८ : २ : ९)

यहाँ 'अर्श' ईश्वर के सिंहासन का नाम है। 'अर्श जल पर है' से पुराणों के शेषशायी ईश्वर का स्मरण आता है। इस मत के माननेवाले ईश्वर को सातवें आसमान (आकाश) में

सिंहासन के ऊपर बैठा मानते हैं; जहाँ से वह फिरिश्तों के द्वारा सारी सृष्टि पर शासन करता है, उनका कहना है यदि ईश्वर सब जगह होता, तो हजरत मुहम्मद साहेब के पास क़ुरान को 'जिब्रील' के द्वारा भेजने की क्या आवश्यकता थी ? परमेश्वर मत्र-पुरीष आदि अशुद्ध घृणित स्थानों में नहीं रहता।

परमेश्वर निराकार

क़ुरान में यह सिद्धान्त भी भली भाँति प्रतिपादित किया गया है, कि ईश्वर अद्वितीय (एक), सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अनुपम, अतिसमीप है। निम्न वाक्य इस आशय को दर्शाते हैं—

"निस्सन्देह तुम्हारा ईश्वर एक परमेश्वर है, उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं, वह कृपालु और क्षमाशील है।" (२: १६: ११)

"ईश्वर गवाही देता है, कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं। फिरिश्ते तथा ज्ञानी (जन) इसपर दृढ़ हैं कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं जो शक्तिमान् एवं ज्ञानी है।" (३ : ८ : ६)

"वह आदि है, वह अन्त है, वह बाहर है, वह भीतर है; वह सब चीजों का जानकार है।" (५७ : १ : ३)

"निश्चय भगवान् (अपने) ज्ञान से सब चीजों को घेरे हुए हैं।" (६५ : २ : ५)।

"(काफिर-नास्तिक) भगवान् की मुलाकात की सन्देह में हैं, वह सर्वव्यापक है।" (५१ : ६ : १०)

"उस ईश्वर के सदृश कोई चीज नहीं।"

"मैं (ईश्वर) चलती नाड़ी से भी समीप हूँ।"

ईश्वर को एकदेशीय और साकार माननेवाले, ऊपर आये सर्वव्यापक आदि विशेषणों का, 'ज्ञान द्वारा सर्वव्यापक' अर्थ करते हैं। इसी प्रकार सर्वव्यापकवादी 'अर्श' का अर्थ शासन

करते हैं; ऐसे ही और अर्थों में भी परिवर्तन करते हैं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पुराने भाष्यकारों और 'हदीस' ग्रन्थों ने किसी एक पक्ष को सर्वथा त्यागा और दूसरे पक्ष को सर्वथा अपनाया नहीं है। इस साकारवाद के आधार पर ही महात्मा मुहम्मद की 'मिअ्राज' यात्रा की अनेक कथाएँ उपरोक्त ग्रन्थों में वर्णित है, जिनको यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत नहीं होता। 'मिअ्राज' सम्बन्धी 'आयत' एकादश विन्दु में दी गई है।

फिरिश्ते (देवदूत)

जिस प्रकार पुराणों में परमेश्वर के बाद अनेक देवता भिन्न भिन्न काम करनेवाले माने जाते हैं, यमराज मृत्यु के अध्यक्ष, इन्द्र वृष्टि के अध्यक्ष इत्यादि; इसी प्रकार 'इस्लाम' ने फिरिश्तों को माना है। पहिले फिरिश्तों के सम्बन्ध में .कुरान में आये कुछ वाक्य दे देने पर इसपर विचार करना अच्छा होगा, इसलिये यहाँ वे वाक्य उद्धृत किये जाते हैं।—

"जब हम (परमेश्वर) ने फिरिश्तों को (आदम के लिये) दण्डवत् करने को कहा; तो सब ने दण्डवत् की किन्तु इब्लीस ने इन्कार किया, घमण्ड किया और (वह) नास्तिकों में से था।" (२ : ४ : ५), (२० : ७ : १)

"जब हमने फिरिश्तों को दण्डवत् करने को कहा, तो इब्लीस के अतिरिक्त सबने किया। (इब्लीस) बोला—क्या मैं उसे दण्डवत् करूँ जो मिट्टी से बना है।" (१७ : ७ : १)

"जब हमने फिरिश्तों को कहा—आदम को दण्डवत् करो, तो (उन्होंने) दण्डवत् की, किन्तु 'इब्लीस' जो जिन्नों "में से था"—ने न किया (२० : ११६)

ऊपर के वाक्यों में फिरिश्तों का वर्णन आया है। भगवान् ने 'आदम' (मनुष्य जाति के आदि पिता) को बनाकर उन्हें

'आदम, को दण्डवत् करने को कहा। सबने वैसा किया, किन्तु 'इब्लीस' ने न किया। यह 'इब्लीस' उस समय फिरिश्तों में सब से ऊपर (देवेन्द्र) था, तृतीय वाक्य में उसे 'जिन्न' कहा गया है, इससे ज्ञात होता है, कि 'फिरिश्ते' और 'जिन्न' एक ही हैं, या जिन्न फिरिश्तों के अन्तर्गत ही कोई जाति है। 'इब्लीस' ने यह कहकर आदम को दण्डवत् करने से इन्कार किया कि वह मिट्टी से बना है। अतः मालूम पड़ता है कि फिरिश्तों की उत्पत्ति किसी और अच्छे पदार्थ से हुई है। अन्यत्र 'इब्लीस' के वाक्य ही से मालूम हो जाता है कि उनकी उत्पत्ति अग्नि से हुई है। अपने भक्तों की रक्षा के लिये ईश्वर इन फिरिश्तों को भेजते हैं। यथा—

फिरिश्तों से सहायता

'हे ईमानवालो! अपने ऊपर ईश्वर की कृपा को स्मरण करो; जब तुम्हारे ऊपर (शत्रुओं की) फौज आई, तो हमने इन (शत्रुओं की फौज) पर आँधी भेजी तथा एक (फिरिश्तों की) फौज भेजी जिसे तुमने नहीं देखा।' (३२ : २ : १)

यह एक युद्ध के सम्बन्ध में वर्णन है, जब कि शत्रुओं की संख्या मुसलमानों से कई गुनी थी। उस वक्त ईश्वर का कोप आँधी रूप से उनके ऊपर पड़ा और ईश्वर ने मुसलमानो की सहायता के लिये फिरिश्तों की फौज भेजी।

यह 'फिरिश्ते' आस्तिकों के पास आते हैं—

"जो कहते हैं कि हमारा मालिक परमेश्वर है और (इसपर) दृढ़ हैं; उनके ऊपर फिरिश्ते उतरते हैं 'और कहते हैं—डरो नहीं, अफसोस न करो, और स्वर्ग का शुभ सन्देश सुनो, जिसके मिलने के लिये तुम्हें वचन दिया गया है।" (४१ : ४ : ५)

प्रत्येक मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों के लेखक तथा रक्षक फिरिश्ते हैं, जिनके विषय में कहा है—

"निस्सदेह तुम्हारे ऊपर रखवाले हैं, किरामन् कातिबीन। जो कुछ तुम करते हो, उसे (वह) जानते हैं।' (८२:१:१०-१२)

'हदीस' और भाष्य (तफ़सीर) ग्रन्थों में आता है, कि प्रत्येक मुनुष्य के दोनों कन्धों पर 'किरामन' और 'कातिबीन' यह दो फिरिश्ते बैठे रहते हैं, जिनमें के एक उसके सारे सुकर्मों को और दूसरा सारे दुष्कर्मों को लिखता रहता है।

फिरिश्तों के पंख

इन फिरिश्तों के पर भी होते हैं—

"प्रशंसा परमेश्वर के लिये है जो दो, तीन, चार पंखवाले फिरिश्तों को दूत बनाता है।" (३५ : १ : १)

कुछ फिरिश्तों का नाम इस वाक्य में दिया है—

"कह (हे मुहम्मद !) निस्सन्देह जिसने ईश्वर की आज्ञा से तुझपर इस (कुरान) को उतारा ...उस 'जिब्रील' का जो शत्रु है जो ईश्वर उसके रसूलों (दूतों, ऋषियों) का, फिरिश्तों का जिब्रील का 'मीकाल' का शत्रु है, निस्सन्देह भगवान् (ऐसे) काफ़िरों (नास्तिकों) का शत्रु है।" (२ : १२ : १, २)

ऊपर आये दोनों फिरिश्तों में 'जिब्रील' (जिब्राईल) सब फिरिश्तों का सरदार है; 'मीकाईल' मृत्यु का फिरिश्ता अर्थात् यमराज है, जिसका काम आयु पूरा होने पर सबको मारना है। ऐसे ही 'हदीसों' में और भी अनेक फिरिश्तों के नाम और काम बतलाये गये हैं। 'इस्राफील' अपना नरसिंहा जब बजायेंगे तब महाप्रलय होगी।

शैतान (पापात्मा)

फिरिश्तों के अतिरिक्त क़ुरान में एक प्रकार के और भी अदृष्ट प्राणी कहे गये हैं, जो सब जगह आने जामें में फिरिश्तों के समान ही हैं, किन्तु वह शुभकर्म से हटाने और अशुभ

कराने के लिये मनुष्यों को प्रेरणा करते हैं। इन्हें 'शैतान' कहते हैं। हमने इस पुस्तक में उनके लिए पापात्मा शब्द लिखा है। शैतानो में सबका सर्दार वही 'इब्लीस' है, जिसका कि नाम ऊपर आया है। शैतान के विषय में कहा है—

'यह केवल शैतान है, जो तुम्हें अपने दोस्तों से डराता है।' (३ : १८ : ४)

शैतान किस प्रकार मनुष्य को अशुभ कर्म की ओर प्रेरणा करता है, उसको इस वाक्य में कहा गया है—

"शैतान उनके कर्मों को सँवार देता है, तथा कहता है—अब कोई मनुष्य तुम्हें जीत नहीं सकता, मैं तुम्हारा रक्षक हूँ; किन्तु जब दोनों पक्ष आमने-सामने आते हैं, तो वह मुँह मोड़ लेता है; और कहता है—मैं तुमसे अलग हूँ, मैं निस्सन्देह देखता हूँ, जिसे तुम नहीं देखते; और परमेश्वर पाप का कठोर नाशक है। (८ : ६ : ४)

इसीलिये कहा है—

"कह, मेरे स्वामी! शैतान के प्रलोभनों से मैं तेरी शरण (आया) हूँ।" (२३ : ६ : ५)

काम करा चुकने पर शैतान क्या कहता है यह इस वाक्य में है—

"काम समाप्त हो जाने पर शैतान ने कहा—निस्सन्देह तुमसे ईश्वर ने ठीक प्रतिज्ञा की थी, और मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की, फिर तोड़ दी; मेरा तुम पर अधिकार नहीं, इसके सिवाय कि मैंने पुकारा और तुमने (मेरी बात) स्वीकार की। सो मुझे दोष मत दो, अपने आपको दोष दो। मैं न तुम्हारा सहायक हूँ, और न तुम मेरे सहायक।" (१४ : ४ : १)

इब्लीस का स्वर्ग से निकाला जाना

शैतान भूमि ही तक नहीं आकाश तक का धावा मारते हैं। कहा है—

"निस्सन्देह हमने आकाश में बुर्ज बनाये, और देखनेवालों के लिये उसे सँवारा और सब दुष्ट शैतानों से उसको रक्षा की उसके अतिरिक्त कि जिसने सुनने के लिये चोरी की, फिर प्रत्यक्ष तारा ने उसका पीछा किया।" (१५ : २ : १-३)

यद्यपि शैतान को आकाश की ओर जाना मना है, किन्तु चोरी से कभी-कभी कोई छिपकर आकाश की बात जानने के लिए चला जाता है, यही आकाश के टूटते तारे या उल्का हैं।

शैतान के अनुयायी मनुष्यों का लक्षण इस प्रकार कहा है—

"मनुष्यों में जो विना जाने, परमेश्वर के विषय में विवाद करते हैं, (वह) सब बागी शैतान का अनुगमन करते हैं।" (२२ : १ : २)

शैतानों के सर्दार 'इब्लीस' का स्वर्ग से निकाला जाना क़ुरान में इस प्रकार वर्णित है—

"जब हमने तुम्हें पैदा किया, फिर तुम्हारी सूरत गढ़ी, फिर फिरिश्तों से कहा—आदम को दंडवत् करो, तो उन्होंने दंडवत् की। किन्तु 'इब्लीस' प्रणाम करनेवालों में न था।"

दुष्ट शैतान

"(परमेश्वर ने) कहा—जब मैंने तुझे आज्ञा दी, तो किसने तुझे मना किया ?

(इब्लीस) बोला—मैं उससे अच्छा हूँ, मेरी उत्पत्ति अग्नि से, और उसकी मिट्टी से।'

(परमेश्वर ने) कहा—निकल जा इस (स्वर्ग) से, क्योंकि यह ठीक नहीं कि तू इसमें रहकर गर्व करे, सो निकल तू क्षुद्र है।

(इब्लीस) बोला—देखना, तब तक मुझे, जिस दिन यह (मनुष्य) उठाये जायेंगे।

(परमेश्वर ने) कहा—निस्सन्देह तू प्रतीक्षा करनेवाला है।

(इब्लीस) बोला—यतः तूने मुझे भरमाया, अतः अवश्य मैं उनके (भटकाने के) लिये तेरे सीधे मार्ग पर खड़ा रहूँगा। फिर मैं जरूर उनके सामने, पीछे, दाहिने, बायें से आऊँगा; और उन (मनुष्यों) में से बहुतों को तू कृतज्ञ न पायेगा।' (७ : २ : ११-१७)

दुष्ट शैतान का इतना भय है कि कहा गया है—

"जब तुम क़ुरान को पढ़ो, तो दुष्ट शैतान से (रक्षा पाने के लिये) ईश्वर की शरण माँगो।" (१६ : १३ : ६)

ऊपर के फ़िरिश्तों और शैतान के वर्णन पढ़ने पर भी जिज्ञासा हो सकती है—, जिस प्रकार परमेश्वर के अनेक लक्षण वर्णित किये गये हैं, वैसे जीव का लक्षण क्या बतलाया गया है। किन्तु यही प्रश्न उस समय भी लोग महात्मा मुहम्मद से करते थे, जिसका उत्तर क़ुरान में निम्न शब्दों को छोड़कर और कुछ नहीं दिया गया—

'क़ुलरूहु मिनअम्रि रब्बी'

(कह, कि जीव मेरे परमेश्वर की आज्ञा से है।)

सप्तम विन्दु

सृष्टि, कर्मफल, स्वर्ग, नर्क

ईश्वर आदि अदृष्ट पदार्थों का वर्णन छठे विन्दु में हो चुका, अब यहाँ मनुष्य के कर्म और उसके परिपाक के साधन सृष्टि, स्वर्ग, आदि का वर्णन किया जाता है। सृष्टि से उसके सिरजनहार का अनुमान होता है, जैसे कार्य से उसके कारण का। व्यवस्था की विचित्रता, रचना की विचित्रता, सौन्दर्य आदि गुणों की अधिकता से, जगत् किसी असाधारण शिल्प-चतुरता से पूर्ण शक्ति का बनाया हुआ है। कोई कोई दार्शनिक सृष्टि को भ्रमात्मक कहकर, परमार्थ में उसकी सत्ता से इन्कारी होते हैं। किन्तु क़ुरान ऐसे जगत् के मिथ्या होने को स्वीकार नहीं करता। कहा है—

'आकाश, पृथ्वी और जो कुछ उनके मध्य में हैं, इन सबको मिथ्या नहीं, एक निर्दिष्ट उद्देश्य से उत्पन्न किया गया है।' (४६ : १ : ३), (४४ : २ : ६), (४५ : ३ : १)

संसार की तुच्छता का वर्णन उसकी अस्थिरता के कारण है। संसार में ही स्वर्गादि स्थान नित्य हैं, इसलिए उनका प्रलोभन सत्कर्मियों को स्थान स्थान पर दिया गया है। संसार और संसार की वस्तुयें ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा का निदर्शन (नमूना) भूत हैं। इसीलिये बहुत जगह ईश्वर की कृतज्ञता के भार से नम्र होने का उपदेश किया गया है।

सृष्टि

"क्यों नहीं परमात्मा पर विश्वास करते, तुम मृतक थे,

फिर उसने तुम्हें जिलाया, और फिर मारता है, तदनन्तर जिलायेगा, अन्त में उसके पास ही जाओगे। वह जिसने तुम्हें और जो कुछ पृथ्वी में है सब को, उत्पन्न किया, फिर आकाश पर चढ़ा और उसे सात आकाशों में विभक्त किया। वह निस्सन्देह सब वस्तुओं का ज्ञाता है।" (२ : ३ : ८, ९)

पुनश्च—

"वह जिसने तुम्हारे लिये नक्षत्रों को निर्माण किया, कि जिससे जंगल, समुद्र और अन्धकार में रास्ता पावें।....। यह जो आकाश से जल गिराता है। फिर उससे सारी उद्भिद्यमान वस्तुयें निकलीं। उससे मैं (प्रभु) ने वनस्पति निकाली, फिर उससे संयुक्त फलों को उत्पन्न करता हूँ, कितने ही खजूर की बाल में लटकते हैं, अनुपम और सोपम अंगूर, अनार और ज़ैतून के उद्यान। जब वह फलते और पकते हैं तो उनके फलों को देखो। इसमें ही विश्वासी जातियों के लिये प्रमाण हैं।" (६ : १२ : ३, ५)

अपरञ्च—

"क्या तू नहीं देखता, परमेश्वर ही ने जल उतारा, फिर उससे अनेक प्रकार के अच्छे फल और पर्वतों में श्वेत, रक्त, अति कृष्ण आदि अनेक वर्ण की उपत्यका उत्पन्न हुई। कीड़े, पशु और मनुष्यों में बहुत प्रकार के वर्णवाले प्राणी हैं। इस प्रकार के ज्ञान वाले भगवान् से डरते हैं। परमेश्वर निस्सन्देह क्षमाशील और बलिष्ठ है।" (३५ : ४ : १, २)

ईश्वर की कृपा कटाक्ष द्वारा मनुष्यों का कोटि-कोटि उपकार हो रहा है, इसलिये उससे कृतघ्न होना ठीक नहीं।

क़ुरान में वर्णित जगत् की उत्पत्ति, उसके दो शब्दों के अर्थ से भली प्रकार विदित हो सकती है। वह हैं—'कुन्, फ़-यकून' (हो, फिर होता है)। भगवान् ने कहा 'हो' फिर यह जगत्

हो जाता है। उपादान आदि कारणों का कोई झगड़ा नहीं है। सर्वशक्तिमान् होने से उसने बिना उपादान कारण ही के जगत् बना डाला। इस प्रकार असद् से सद् की उत्पत्ति ही क़ुरान प्रतिपादित सृष्टि है। यहूदी और ईसाई धर्म में भी यही सृष्टि-विषयक सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। उनके विचार में, यदि दूसरे प्रकार से माना जाय, तो ईश्वर शक्तिमान् नहीं रह सकता। किसी को सन्देह हो कि, क्या जाने अभिन्न निमित्तोपादानता (वही निमित्त और वही उपादान कारण है) को स्वीकार करते हों। किन्तु इस बात को इस वाक्य ने ही स्पष्ट कर दिया, जिसमें कहा है—'न वह उत्पादक है और न वह उत्पन्न हुआ है।' यहाँ उपादान कारण से जगत् उत्पन्न करने में भगवान् की उत्पादकता का निषेध है, न कि बिना उपादान ही, असत् से। उनका कहना है, यदि वह स्वयं उपादान कारण है तो निर्विकार नहीं रह सकता, यदि उसे अन्य उपादान कारण की अपेक्षा है तो, सर्व-शक्तिमान् नहीं रहता।

जहाँ-तहाँ वर्णित सृष्टि-विषय को यहाँ संक्षेप से उद्धृत किया जाता है।

उपादानकारण बिना सृष्टि

१—"क्या अविश्वासियों (नास्तिकों) ने नहीं देखा, आकाश और पृथ्वी पहिले ढँके थे, फिर हमने उन दोनों को उघाड़ा, और पानी से सारे प्राणियों का निर्माण किया। आकाश को सुरक्षित छत बनाया; वह उसके प्रमाण हैं, किन्तु (वे) विश्वास नहीं करते। जिसने रात, दिन, चन्द्र, सूर्य को बनाया, (जो कि) सारे आकाश में परिक्रमा देते हैं। पूर्वजों में से भी किसी को अमर नहीं बनाया, यदि तू (मुहम्मद) मरे तो क्या वह (नास्तिक) अमर है। सारे प्राणी मृत्यु के स्वाद रूप हैं।" (२१ : ३ : १, ३—५)

२—"वह जो ईश्वर—जिसने आकाशों को खम्भा बिना उठाया। देखो उसे, फिर वह चढ़ा 'अर्श'[1] पर; चन्द्रमा और सूर्य को वश में लाया। सभी एक निर्दिष्ट काल में चलते हैं वह कर्म की योजना करता है, और प्रमाणों का विस्तार; कदाचित् (लोग) अपने प्रभु के मिलने पर विश्वास करें। वह जिसने पृथ्वी को विस्तृत किया, और उसमें भार, नदी, सारे फल—दो-दो जोड़े (बनाये)। वह रात और दिन को ढाँकता है। विचारवान् जातियों के लिये यहाँ उपदेश है। (१३ : १ : ३, ४) (५७ : १ : ४)

सृष्टि

३—'मैंने पङ्क से ही मनुष्य को बनाया। उससे पहिले प्रज्वलित अग्नि से जान्न[2] (जिन्न) उत्पन्न किये।' (१५ : ३ : १, २)

४—'मनुष्य को विन्दु से सिरजा।' (१६ : १ : ४)

५—'जिसने छै दिनों में पृथ्वी, आकाश और जो कुछ उनके भीतर है, निर्माण किये; फिर स्वर्ग पर चढ़ा।' (२५ : ५ : १५)

६—'धन्य है, जिसने आकाश में शिखर, वहाँ प्रकाशक चन्द्र और प्रदीपों को सिरजा।' (२५ : ६ : २)

७—'सिकन्दर पश्चिम दिशा में चला गया, यहाँ तक कि उसने सूर्य के अस्त होने के (उस) स्थान को पा लिया; जहाँ सूर्य एक कीचड़वाली नदी में डूब जाता है। और उसके पास में (उसने) किसी एक (मानव) जाति को पाया।' (१८ : ११ : ४)

१—स्वर्ग का सिंहासन जिस पर ईश्वर आसीन होता है।

२—देवयोनियों में से एक।

न्याय-दिन (क़यामत)

इस प्रकार सृष्टि का वर्णन करके, इसके बाद उसके उपभोक्ता जीवों का वर्णन किया जाता है । ईसाई और यहूदी धर्मों की भाँति, इस्लाम भी, जीवों के फिर फिर जन्म लेने को नहीं मानता । संसार में मनुष्य, पशु आदि सबके जीव प्रथम ही प्रथम शरीर में प्रविष्ट हुए । मरने के बाद उनका फिर जन्म न होगा । हाँ प्रलय (क़यामत) अथवा पुनरुत्थान के दिन, प्रत्येक जीव अपने पुराने शरीर के साथ जी उठेगा । उसी दिन उसके शुभ-अशुभ कर्मों का पारितोषिक या दण्ड सुनाया जायगा । संसारी प्राणी का कोई सञ्चित और प्रारब्ध कर्म नहीं होता । जगत् के भोगों की असमानता जीव के कर्म के अनुसार नहीं है, यह ईश्वर की इच्छा है । अपने-अपने कर्मों का फल मनुष्य ही पावेंगे, पशु-पक्षी नहीं, मनुष्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ईश्वर ने उन्हें बनाया है । उस निर्णय-दिन, और उसके निर्णय के विषय में क़ुरान के निम्नलिखित भाव हैं—

१—"जिसने पुण्य कर्म किया, वह अपने लिये; जिसने पाप कर्म किया वह अपने लिये । तेरा ईश्वर किसी सेवक के साथ अन्याय नहीं करता ।" (४४ : ६ : २)

२—"उस दिन न मित्र किसी मित्र के सहायक होंगे । और न वह सहायता पाये (होंगे ।)" (४४ : २ : १२)

३—"प्रभु कणिका मात्र भी किसी पर अन्याय नही करता, यदि पुण्य है तो उसको दूना कर देता है (और) अपने पास से बड़ा फल देता है ।" (४ : ६ : ७)

४—"उस दिन कोई दूसरे का भार नहीं उठायेगा, यदि बहुत भार से टूटा जाता कोई पुकारे तो भी उससे कछ (लेकर कोई)

न ढोवेगा, चाहे सम्बन्धी ही क्यों न हो।" (३५ : ३ : ४), (३६ : १ : ६)

कर्म-भोग

५—"जो कुछ उन्होंने अर्जन किया, अवश्य सब प्राणी उसका फल पायेंगे, वह अन्याय से पीड़ित न होंगे।" (४५ : ३ : १)

६—"मेरे लिये मेरा कर्म, तुम्हारे लिये तुम्हारा कर्म; जो कुछ मैं करता हूँ तुम उससे निर्मुक्त हो; जो तुम करते हो, उससे मैं मुक्त हूँ।" (१० : ५ : १)

इन वाक्यों से, 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं' यही सिद्धान्त निकलता है। किन्तु पश्चात्ताप (तोबः) और प्रेरित की सिफ़ारिश से भी पाप का क्षमा होना इस्लाम में माना गया है—

"यह जो अपने सेवकों से पश्चात्ताप को स्वीकार करता है, पापों को क्षमा करता है, और जानता है जो कुछ कि तुम करते हो।"

इत्यादि वाक्य पश्चात्ताप से पाप के क्षमा होने के सिद्धान्त के प्रमाण हैं। एक जगह कहा है—

"डरो उस दिन से, जब एक जीव दूसरे जीव के कर्म को न बदल लेगा, और न सिफ़ारिश स्वीकार होगी, न उसके बदले में लिया जायगा, और न वह सहायता पाये हुए होंगे।"

(२ : ६ : २)

यद्यपि यह वाक्य बतलाता है, कि किसी की सिफ़ारिश स्वीकृत न होगी, किन्तु तो भी 'सिफ़ारिश से पापमोचन' इस्लाम में प्रायः सर्व-तन्त्र सिद्धान्त है; परन्तु क़ुरान में इस सिद्धान्त का प्रतिपादक कोई भी स्पष्ट वाक्य नहीं है।

स्वर्ग

मनुष्य का यह जन्म सर्वप्रथम और अन्तिम है। इस जन्म में फल-भोग सम्भव नहीं। मरने पर पुण्यात्मा स्वर्ग को, पापी नर्क को, और किसी-किसी के मत में, दोनों की समानतावाला, 'एराफ़' (इअराफ़) को जाता है। जिस प्रकार पुराणों में अनेक प्रकार के सुख-भोगों से परिपूर्ण स्वर्ग लोक वर्णित है, वैसा ही यहाँ पर भी है। जैसे वहाँ नन्दन-कानन को सौन्दर्य की खानि अप्सराएँ अलंकृत करती हैं, वैसे ही यहाँ भी 'जन्नत' के उद्यान को शोभा-राशि 'हूर' आनन्दमय बनाती हैं। 'क़ुरान' में विश्वासियों (मुसल्मानों) को उनके शुभ-कर्म के फलस्वरूप स्वर्ग का अत्यधिक वर्णन है। उसमें से थोड़ा-सा यहाँ उद्धृत किया जाता है—

१—"शुभ-कर्म करनेवाले विश्वासियों को शुभ-संदेश सुना— उनके लिये उद्यान (बाग़) है, उसके नीचे नहरें बहती हैं, सारे अच्छे फल वहाँ लाये गये हैं। (स्वर्गवाले) उन लोगों को, जैसा कि पहिले (कहा गया था), वैसा ही यह उपहार दिया है। उसमें उनके लिये सुन्दर स्त्रियाँ हैं, और वह (पुण्यात्मा लोग) सर्वदा वहाँ के निवासी (होंगे)।" (२ : ३ : ५)

२—"उस दिन स्वर्गवाले कार्य में आसक्त संलाप करते हैं। वह और उनकी स्त्रियाँ छाया में तकिया लगाये तख़्तों पर बैठी (होंगी)। वहाँ उनके लिये अच्छे फल और जो कुछ वह चाहते हैं (वर्तमान होगा)।" (३६ : ४.: ५-७)

३—"स्वर्ग के ऐश्वर्यों में—तख़्तों पर आमने सामने (बैठे हैं) (लड़के) सुन्दर शराब के प्यालों के लिये घूमते हैं। वह (शराब) श्वेत वर्ण और पीनेवालों के लिये सुस्वादु है। उससे सिर नहीं

चकराता और न उससे मतवाले होते हैं। उनके पास नीचे को दृष्टि रखनेवाली विशालनेत्रा (स्त्रियाँ हैं)। (उनके नेत्र) मानो छिपे अण्डे हैं।" (३७ : २ : २०—२६)

४—"उन (विश्वासियों) के लिये खुले द्वारवाला, रहने का बाग है।···बहुत प्रकार के स्वादु फल और शराब उनके पास लाते हैं। उनके पास नीचे दृष्टिवाली समान-वयस्का (स्त्रियाँ) हैं।" (४८ : ४ : १२-१४)

५—"तुम और तुम्हारी पत्नियाँ सादर उद्यान में प्रवेश करो। उन (स्वर्गीयों) के पास सुनहली थाली (तस्तरी) और प्याले (लिये लड़के घूमते हैं), वहाँ सब कुछ है—जो कुछ चाहिए और जो कुछ नेत्रों को अच्छा प्रतीत होता है; तुम लोग सर्वदा वहाँ के वासी (रहोगे)। यह वही उद्यान है, जिसे तुमने उसके बदले पाया है, जो कुछ कि तुम करते थे। तुम्हारे लिये वहाँ बहुत से स्वादु फल हैं, उनमें से खाओ।" (४३ : ७ : ३-६)

६—"उद्यान का वृत्तान्त जो उनके लिये प्रतिज्ञात है, वहाँ दुर्गन्धरहित जल की नहरें दूध की नहरें हैं, जिनका स्वाद नहीं बदलता; शराब की नहरें जो पीनेवालों को स्वादिष्ट हैं; फेन-रहित मधु की नहरें हैं; उनके लिये वहाँ बहुत से स्वादिष्ट फल हैं।" (२६ : २ : ४)

७—"यथेच्छ खाओ, पिओ, यह उसी के लिये है जो कुछ कि तुम करते थे। पाँती से रखे हुए तख्तों पर वह बैठे हैं हमने उन्हें विशालनेत्रा, गोरियों के साथ ब्याह दिया, और हमने इच्छानुकूल मांस और सुन्दर फलों से उपकृत किया। प्याले खींचते हैं, उसमें न पाप की ओर प्रेरणा है न नशा। उनमें सीप में रक्खे मोतियों के समान बालक घूमते हैं।" (५२ : १ : १६-२०, २२-२४)

८—"सरहद्वाली बेर (वृक्ष) के पास, वहाँ वासोद्यान है। (५३ : १ : १५, १६)

९—"प्रभु के विरोध में खड़े होने से डरनेवालों के लिये दो बाग हैं। फिर (हे नास्तिको, मनुष्य और जिन्नो !) तुम कौन कौन से भगवान् के प्रसादों को झुठलाओगे ? जहाँ बहुत सी शाखाएँ हैं। फिर०। उन दोनों (बागों) में दो झरने झरते हैं। फिर०। उनमें नाना प्रकार के सारे अच्छे फल हैं। फिर०। तकिया लगाये कोमल तूल-शय्या पर बैठे हैं, दोनों बागों में फल लटक रहे हैं। फिर०। वहाँ मनुष्यों और जिन्नों से न छूई गई, नीचे दृष्टिवाली रमणियाँ हैं। फिर०। 'वह लाल और मूँगा' की भाँति हैं। फिर०। उनमें दो गर्म पानी के सोते हैं। फिर०। वहाँ अच्छे अच्छे फल खजूर और अनार हैं। फिर०। सब उद्यानों में परिशुद्ध सुन्दरियाँ हैं। फिर०। (वह) संयमयुक्त, गौरवर्ण वाली, शामियानों में हैं। फिर०। किसी मनुष्य या जिन्न से वह (इससे) पूर्व नहीं छूई गई हैं। फिर०। वहाँ तकिया लगाये हरे चँदवे के नीचे बैठे हैं; और वहाँ कोमल, बहुमूल्य बिछौने भी हैं। फिर०।" (५५ : ३ : ४६—७७)

१०—"(उस) ऐश्वर्यशाली उद्यान में !......। आमने सामने तकिया लगाये बैठे हैं। उनमें घूमते हैं सदा बसनेवाले बालक, तस्तरी पियालों और घड़ों के साथ। (शराब वहाँ की) न सिर चकराती है न उसमें नशा है। इच्छानुकूल अच्छे अच्छे फल। उड़ते हुए पक्षियों के रुच्यनुकूल मांस। सीप में रखे मुक्ता-फल सदृश, विशालनेत्रा गोरियाँ।...। वहाँ झूठ और चुगुली सुनने में नहीं आती, किन्तु 'सलाम', 'सलाम' (शान्ति, शान्ति)। दक्षिण की ओर रहनेवाले दक्षिणी कैसे हैं, कण्टक-रहित बेर के वृक्ष के नीचे। नीचे ऊपर केला है। फैली छाया है। जल सींचा है। बहुत से अच्छे फल हैं। (जो) न टूटे हैं

न निषिद्ध। ऊँचे बिछौने हैं। एक समय उठी हुई, समान-वयस्का (एक आयुवाली) उन कुमारियों को मैंने दाहिनी तरफ वालों के लिये बनाया है।" (५६ : १ : १२, १५-२३, २४-३१, ३२-३८)

नर्क

११—"सुनहले मोतीवाले कङ्कणों से आभूषित वासोद्यान में प्रवेश करेंगे और वहाँ उनका वस्त्र रेशमी (होगा)।" (३५ : ४ : ७)।

उपरोक्त वाक्यों से क़ुरान-प्रतिपादित स्वर्ग का अनुमान हो सकता है। किन्हीं-किन्हीं आधुनिक व्याख्याताओं का मत है, कि यह सब वाक्य, जार्डन आदि नदियों से सुसिंचित 'यमन' आदि प्रदेशों पर मुसल्मानी विजय के लिये भविष्यद्वाणी हैं; किन्तु यह मत न प्राचीन भाष्यकारों द्वारा अनुमोदित है, और न यह सारे सामान वहाँ के लिये घटित होते हैं। वह बीसवीं शताब्दी के अनुकूल इसे बनाना चाहते हैं, किन्तु ऐसी भविष्य-द्वाणियों ही पर कहाँ बीसवीं शताब्दी विश्वास करती है। अस्तु कुछ थोड़े से नवीन विचारवालों को छोड़कर सारा इस्लामी संसार उपरोक्त प्रकार का ही स्वर्ग मानता है। स्वर्ग ऐसी अदृष्ट वस्तु वस्तुतः कल्पना की सीमा के बाहर की है, उसमें ईश्वरीय आदेश ही प्रमाणभूत है।

स्वर्ग में जिस प्रकार आनन्द-सागर तरंगें मार रहा है। नर्क में वैसे ही विपत्ति की ज्वाला धाँय धाँय जल रही है। क़ुरान में अनेक स्थानो पर स्वर्ग-वर्णन के पास पास नर्क का भी वर्णन आया है; जिसमें कि पापी पाप करना छोड़ अच्छा कर्म करने-वाले बनें, और निर्णय के दिन नर्काग्नि में न डाले जायँ। यहाँ कुछ नर्क-प्रतिपादक वाक्यों को उद्धृत किया जाता है—

१—"डरो उस अग्नि से जिसके इधन मनुष्य हैं।" (२ : ३ : ४)

२—"जिन्होंने हमारे प्रमाणों पर विश्वास नहीं किया, थोड़ी देर में हम उन्हें अग्नि में फेंक देंगे। जब उनका एक चमड़ा जल जायगा, तो उससे दूसरा हम बदलेंगे, जिसमें (मजा चखें) कष्ट आस्वादन करें।" (४ : ८ : ६)

३—"उसके बाद नर्क में पीब का जल पिलाया जायगा। एक-एक कुल्ला लेता है किन्तु घोंट नहीं सकता। उसके पास मृत्यु भी आती है, वह नहीं मरता। उसकी पीठ पर बड़ा डण्डा है।" (१४ : ३ : ४, ५)

४—"उन सारे शैतान के अनुयायियों के लिये नर्क का वचन दिया गया है, उसके सात द्वार हैं, प्रत्येक द्वार में एक झुण्ड बाँटा गया है।" (१५ : ३ : १६)

५—"उसे अग्नि के समूह में डाल दे। फिर १४० हाथ लम्बी बेड़ी से बाँध दे। वह महान् परमात्मा पर विश्वास नहीं करता था। याचकों को भोजन देने में दत्तचित्त न होता था। यहाँ इसके सिवाय उसका कोई मित्र नहीं। घाव के धोये जल के सिवाय (कोई) भोजन नहीं। अपराधी छोड़ दूसरा कोई उसे नहीं खाता।" (६६ : २ : २८-३४)

६—"स्वर्ग में (स्वर्गी लोग) पूछते हैं, हे पापियो! क्या तुम्हें नर्क में डाल दिया? बोले—हम न नमाज़ी थे, न गरीबों को भोजन कराने वाले थे। हम निर्णय-दिन को झुठलानेवाले थे। इतने ही में विश्वसनीय (मृत्यु) हमारे पास आ गया। फिर सिफ़ारिश करनेवाले की सिफ़ारिश कोई काम की नहीं।" (७४ : २ : ६, १*, १२–१४, १६–१८)

७—"और उत्तर[1] वाले, कैसे उत्तर वाले ? ज्वाला में, सन्तप्त जल में, धुएँ की छाँह में, (जो न शीतल है न स्थिर) 'जक्कूम'[2] वृक्ष को खायेंगे। उससे पेटों को भरेंगे। फिर उसके ऊपर गर्म जल पीयेंगे।" (५६ : २ : २–५, १३–१५)

८—"काफ़िरों के लिये आग्नेय वस्त्र बनाये गये हैं। उनके सिर पर गर्म जल डाला जाता है। उससे जो कुछ पेट में है और जो चमड़ा है, सब बह जाता है। उनके लिये लोहे के मुद्गर हैं। कण्ठ रुक जाने से वह बाहर निकलना चाहते हैं, किन्तु फिर भीतर डाल दिए जाते हैं। चक्खो नर्क यातना को।"

स्वर्ग-नर्क का सावधि होना

९—"नर्कवाले स्वर्गवालों से बोले—कुछ थोड़ा सा जल हमारे लिये फेंक दे, और जो कुछ तुम्हारे लिये परमात्मा ने दिया है (उसमें से भी)। बोले—यह दोनों नास्तिकों के लिये मना है।" (७ : ६ : ३)

स्वर्ग की रमणीयता और नर्क की भीषणता उपर्युक्त वाक्यों से भली प्रकार ज्ञात हो सकती है। नर्क और स्वर्ग दोनों का उपभोग अनन्त काल के लिये होता है, यह भी बार-बार बतलाया गया है। किन्तु कहीं कहीं उनकी अवधि ईश्वर की इच्छा के अनुसार बतलाई गई है। यथा—

"जिन्होंने पुण्याचरण किया, जब तक आकाश और पृथ्वी हैं, वह सर्वदा स्वर्ग के वासी होंगे; किन्तु यदि तेरा स्वामी चाहे, (उस स्वामी का) प्रसाद असीम है।" (११ : ९ : १३)

"वे जिन्होंने पापाचरण किया, नर्काग्नि उनके लिये है, वहाँ चिल्लाहट और आर्त्तनाद है। जब तक आकाश और पृथ्वी हैं,

---

१—उत्तरवाले नर्की हैं, और दक्षिणवाले स्वर्गी।

२—अरब का एक वृक्ष जो बड़ा कटु और दुःस्वादु होता है।

वह वहाँ सदा (रहेंगे), किन्तु यदि तेरा प्रभु चाहे, तो जो चाहे वह कर सकता है।" (११ : ६ : ११, १२)

यहाँ के दूसरे उद्धरण को लेकर कितने ही लोग नर्क को सान्त मानते हैं। किंतु स्वर्ग को अनन्त ही मानते हैं। वाक्यों को देखने से तो दोनों ही स्थान पर एक ही सा भाव प्रतीत होता है।

एराफ़

स्वर्गीयों और नर्कीयों का अपने-अपने स्थान से वार्तालाप होते हुए भी पहिले क़ुरान के वाक्यों में देखा गया है। इससे यह मालूम हो जाता है कि दोनों पास-पास हैं। नर्क उत्तर तरफ और स्वर्ग दक्षिण ओर है, इसीलिये दोनों के निवासियों को भी क्रमशः उत्तरी और दक्षिणी कहते हैं। दोनों के बीच में एक दीवार है। क़ुरान में कहा है—

"दोनों के बीच में एक ओट (या दीवार) है, उसके ऊपर मनुष्य हैं, जो प्रत्येक को उनके लक्षणों से पहचानते हैं। वे स्वर्गीयों से बोलते—तुम्हारे लिये नमस्कार है। वे स्वर्ग में प्रविष्ट नहीं हुए, वे स्वर्ग के इच्छुक हैं। जब नारकीयों की ओर (उनकी) दृष्टि पड़ी, बोले—हे मेरे स्वामी, हमें अपराधी लोगों के साथ न कर।" (७ : ५ : ७, ८)

इसी बीच की ओट या दीवार को 'एराफ़' (इअ्राफ़) कहते हैं। और इस पर के रहनेवाले अस्हाबि-इअ्राफ़ या 'एराफ़' वाले कहलाते हैं। वे नर्क-स्वर्ग दोनों में से एक की भी योग्यता न रखने के कारण यहीं निवास करते हैं।

कर्मों के अधीन स्वर्ग, नर्क हैं—यह ऊपर कहा गया है। कर्मों के भोगने में जीव परतन्त्र है, यह सर्वसम्मत है; किन्तु

क़ुरान में अनेक वाक्य ऐसे हैं, जिनसे जीव की कर्म करने में भी परतंत्रता झलकती है। जैसे—

पुनर्जन्म

"ईश्वर जिसे मार्ग पर (चलने को) प्रेरणा करता है; वह मार्ग वाला (होता है), जिसे भटकाता है वह भटकता रहता है।" (७ : २२ : ७)

"ईश्वर ने उन (क़ाफ़िरों) के दिलों पर, उनके कानों पर मुहर कर दी, उनकी आँखों पर परदा है, उनके लिये बड़ी यातना है।" (२ : १ : -)

"उनके दिल में रोग है, उसे भगवान् ने और भी बढ़ा दिया।" (२ : १ : -)

"भगवान् जिसे चाहता है मार्ग पर लगाता है, जिसे चाहता है भटकाता है।"

मृत्यु भी भगवान् ही के अधीन है—

"कोई भी जीव परमेश्वर की आज्ञा में लिखित अवधि के विरुद्ध नहीं मरता।" (३ : १५ : २)

एक स्थान पर इस प्रकार भी कहा है—

"जो उसकी इच्छा का अनुसरण करता है, प्रभु उसे शान्ति-मार्ग बतलाता है। अपने आदेश से अन्धकार से प्रकाश की ओर भेजता है, उसे सीधे मार्ग पर चलाता है।" (५ : ३ : ५)

हिन्दी-धर्म-वालों (जैन, बौद्ध, ब्राह्मणधर्मी) ने जिस प्रकार अन्यायरूपी दोष-पात होने के कारण अनेक जन्मों को स्वीकार किया है, वैसे यद्यपि सारे मुसल्मानों का मत नहीं है; किन्तु तो भी इस्लाम में ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जो पुनर्जन्म को मानते हैं।

संसार-प्रसिद्ध कवि-दार्शनिक महात्मा 'रूमी' अपनी 'मस्नुई' में लिखते हैं—

"हम् चुँ सब्ज़ा बारहा रोईद अम् ।
हफ़्त सद् हफ़्ताद क़ालिब् दीद अम् ॥"
(मैं उगा नव सस्यवत् कितनी ही बार ।
सात सौ सत्तर शरीरें देख लीं ॥)

इस सिद्धान्त के माननेवाले क़ुरान के इस वाक्य को साक्षी रूप में उपस्थित करते हैं—

"जिस पर परमेश्वर कुपित हुआ, उनमें से कुछ को वानर और सूअर बना दिया।" (५ : ६ : ४), (७ : २१ : ३)

यहाँ एक प्राचीन जाति के पापी लोगों का प्रभु के प्रकोप से मनुष्य से पशु हो जाना कहा गया है।

जीवों के कर्मों के परिपाक के साधन नर्क, स्वर्ग की विवेचना करके आगे क़ुरान के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त लिखे जायँगे।

———

अष्टम विन्दु

धार्मिक कर्त्तव्य

"रज़ीतु लकुमुल्-इस्लाम दीन।" (तुम्हारे लिये मैंने इस्लाम को 'दीन' पसन्द किया) (५ : १ : ३)

"इस्लाम धर्म परमेश्वर की ओर से है।" (३ : २ : १०)

"इस्लाम में पूरा प्रविष्ट हो।" (२ : २५ : १२)

उपरोक्त वाक्यों में क़ुरान-प्रतिपादित धर्म का नाम इस्लाम आया है। 'इस्लाम' का शब्दार्थ शान्ति अथवा शान्ति-क्रिया है। 'इस्लाम' के माननेवाले 'मुस्लिम' कहलाते हैं, जिसका बहुवचन 'मुसल्मान' है। यद्यपि शब्द 'मुसल्मान' अरबी भाषा के अनुसार बहुवचन न हो द्विवचन है। किन्तु भारत में मुसल्मानी काल में फ़ारसी भाषा का बहुत प्रचार था, इसलिये फ़ारसी की बहुवचन वाली 'आन' प्रत्यय लगाकर इसे भी बहुवचन ही समझा गया। इस्लाम के अतिरिक्त अन्य धर्मों के विषय में कहा है—

"जिसने इस्लाम से भिन्न धर्म को स्वीकार किया, कदापि वह स्वीकृत न होगा और वह अन्त्य-दिन में घाटा उठानेवाला है।" (३ : ८५)

यहाँ यदि इस्लाम धर्म से शांति-धर्म समझा जाय, तो इसकी सच्चाई में कोई संदेह नहीं हो सकता। यही लेना भी चाहिए। द्वितीय विन्दु में हम लिख आये हैं, कि 'इस्लाम' संसार भर के ऋषि-वाक्यों को आदर की दृष्टि से देखता है। अत: उसमें साम्प्रदायिक संकीर्णता होना उसके योग्य नहीं। किन्तु इस तथ्य को समझने के लिये बहुत कम ने चेष्टा की है।

इस्लाम के सिद्धान्त

अरबी के 'मजहब' और 'दीन' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हैं, उसे अँग्रेजी का Religion (रिलीजन) शब्द तो अवश्य व्यक्त कर सकता है, किन्तु संस्कृत या हिन्दी में उसका पर्याय-वाची कोई एक शब्द नहीं मिलता। यद्यपि 'पन्थ' शब्द ठीक 'मजहब' शब्द के ही धात्वर्थ को प्रकाशित करता है, किन्तु जिस प्रकार धर्म शब्द अतिव्याप्त है, उसी प्रकार यह अव्याप्ति-दोष-ग्रस्त है। इस निबन्ध के वर्णानानुसार जो मार्ग मनुष्य के ऐहिक और आयुष्मिक श्रेय की प्राप्ति के लिये अनुसरण करने योग्य है; वही इस्लाम पन्थ, धर्म या सम्प्रदाय है। आसानी के लिये हम प्रायः पन्थ शब्द ही को इसके लिये प्रयुक्त करेंगे। हर एक पन्थ में दो प्रकार के मन्तव्य होते हैं। एक विश्वसात्मक, दूसरे क्रिया-त्मक। नीचे दोनों प्रकार के इस्लामी मन्तव्यों को .कुरान के शब्दों ही में उद्धृत किया जाता है—

"यह पुण्य नहीं कि, तुम अपने मुँह को पूर्व या पश्चिम की ओर कर लो, पुण्य तो यह है—परमेश्वर, अन्तिम दिन, देव-दूतों, पुस्तक और ऋषियों पर श्रद्धा रखना; धन को प्रेमियों, सम्बन्धियों, अनाथों, दरिद्रों, पथिकों, याचकों और गर्दन बचाने के लिये देना; उपवास ('रोज़ा') रखना; दान देना; जब प्रतिज्ञा कर चुके तो अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना, विपत्तियों, हानियों और युद्धों में सहिष्णु (होना); (जो ऐसा करते हैं) वही लोग सच्चे और संयमी हैं।" (२ : २२ : १)

भ्रातृभाव

अन्यत्र विश्वासात्मक सिद्धान्तों को और भी स्पष्ट किया है—

"हे विश्वासियो (मुसल्मानो)! परमेश्वर; उसके प्रेरित और जो पुस्तक उसके प्रेरित पर और उससे पहिले उतरीं, इन

सब पर विश्वास रक्खो। जो परमेश्वर उसके दूत, उसकी पुस्तकों, उसके प्रेरित और अन्तिम-दिन पर विश्वासनहीं रखता, अवश्य वह (सच्चाई से) अति दूर भूला है।" (४ : २० : २)

जिस प्रकार ऊपर के वाक्य में पूर्व पश्चिम मुँह घुमाने मात्र को धर्म न ठहरा, विश्वास आदि पर भी बल दिया गया है। उसी प्रकार निम्न वाक्यों में निरे विश्वास को पर्याप्त न समझ, शुभकर्मों का विधान किया गया है।

"निस्सन्देह जिन्होंने विश्वास किया और अच्छा काम किया, प्रार्थना (नमाज़) को जारी रक्खा, और दान दिया; उनके लिये उनके ईश्वर से फल है; उनपर भय नहीं, और न वह शोकाकुल होंगे।" (२ : ३८ : ४)

दान-धर्म के बारे में एक स्थान पर आया है—

"जब तक अपनी प्रिय वस्तु में से न ख़र्च करो; पुण्य को नहीं पा सकते।" (३ : १० : १)

उपरोक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त, एक और बात है, जिसे इस्लाम बड़े बल से प्रचारित करता है, वह है भ्रातृभाव।

"अवश्य सारे मुसल्मान भाई हैं। अतः मिला दो (परस्पर लड़ते) भाइयों को। ईश्वर से डरो, कदाचित् तुम दया के पात्र बनाये जाओ।" (४६ : १ : १०)

इस्लाम का इतिहास भी बतलाता है कि, उसने अपने इस वचन का बहुत कुछ पालन किया है। स्वयं महात्मा मुहम्मद ने अपनी फूफी को लड़की, दास ज़ैद को व्याह दी। आज भी जो हब्शी संसार में अछूत गिने जाते हैं, उन्हीं की जाति का 'बलाल' महात्मा का अत्यन्त प्रेमपात्र तथा इस्लाम के प्रतिष्ठित पितामहों में गिना जाता है। भारतवर्ष ही में दास 'क़ुतुबुद्दीन' को ग़ोरी ने कितने ऊँचे सम्मान का भाजन बनाया! यों तो ऊँच-नीच

भाव से पूर्ण, भारत के वायुमण्डल में आकर, भला मुसल्मान कोरे क्योंकर रह सकते थे। आखिर उन्होंने भी इस देश के अनेक व्यवहारों के साथ, जात-पाँत, ऊँच-नीच विचारों को अपना ही लिया। कौन कह सकता है कि इस भाव-परिवर्तन ने मुसल्मानों की शक्ति को क्षीण नहीं कर दिया! मौलाना हाली ने इसी पर कहा है।

"व' बहरेहिजाज़ी का बेबाक बेड़ा।
न कुल्ज़म् में झिझका न अस्वद् में अटका॥
व' डूबा दहाने में गंगा के आकर॥"

यद्यपि भारतीय मुसल्मानों में बिल्कुल उसी प्रकार का भ्रातृभाव नहीं, जैसा कि क़ुरान को अभीष्ट है; तो भी इसमें सन्देह नहीं कि मुसल्मानों में जितना भ्रातृभाव है, उतना दूसरों में नहीं है। जापान, ब्रह्मा, स्याम, तिब्बत आदि के बौद्ध, भारतीय हिन्दुओं से उसी प्रकार धर्म के बन्धन में बद्ध है, जैसे अन्य देशीय मुसल्मानों से भारतीय; किन्तु क्या कभी वह प्रेम उनमें देखा जाता है, जो काबुल, तुर्किस्तान, अरब और भारत के मुसल्मानों में परस्पर पाया जाता है? क्या भारतीय हिन्दुओं ने रूस-जापान युद्ध में अपने सहधर्मी जापानियों के साथ उसी प्रकार सहानुभूति दिखलाई, जिस प्रकार मुसल्मानों ने अपने धर्म-भाई तुर्कों के साथ? वस्तुतः प्रेम जीवन की वस्तु है; किसी निर्जीव या मूर्छित व्यक्ति या जाति में उसका पता मिलना कठिन है। भारत के बाहर दूर देशों में रहनेवाले बौद्ध-धर्म-बन्धुओं के हृदय में पवित्र भारत के प्रति—जिसमें स्नेहमय गौतम की चरण-धूलि अब भी वर्तमान है—मुसल्मान भाइयों के अरब से कम प्रेम नहीं है। सहस्रों कोशों से समुद्र और पहाड़ों को फाँदकर आये हुए, इन तीर्थ-यात्रियों को; जिन्होंने अपनी आँखों सहस्रों की संख्या में, उरुबिल्व (बोध गया), ऋषिपतन मृगदाव

(सारनाथ, बनारस), कुशीनगर (कसया, गोरखपुर), लुम्बिनी (रुम्मिन् देई, तराई, नैपाल), और जेतवन (सहेट-महेट, बहराइच) में देखा है, वही इस बात की साक्षी दे सकते है। किन्तु क्या हिन्दू उनके लिये कुछ भी ध्यान देते हैं? उनमें से तो कितनों को इसका भी ज्ञान नहीं कि उनके ५०, ६० करोड़ धर्म-भाई भारत से बाहर भी रहते हैं, जो हमारी ही भाँति 'अरियधम्म' (आर्य्य धर्म) और आर्य सभ्यता के भक्त हैं। उनके लिये 'बोधगया' के बराबर संसार में कोई स्थान नहीं। जिस बोधि-वृक्ष (पीपल) के नीचे पिण्डदान और प्रणाम करने से हिन्दू अपने सारे मृत पितरों को तार देते हैं, उसी के लिये, संसार के बौद्ध-भिक्षु और गृहस्थ, प्रातः और सायं यह श्लोक पढ़कर सिर झुकाते हैं—

कर्तव्य-कर्म

यस्स मूले निसिन्नो वे सब्बारि विजयं अका।
पत्तो सब्बञ्ञुतां सत्था वन्दे तं बोधि-पादपम्॥
जेहि मूल में बैठे हुए [1]सर्वारिपर विजयी हुए।
पाये प्रभू सर्वज्ञता उस बोधितरु को वन्दना॥

धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध के इतने दृढ़ होते हुए भी हिन्दुओं का बाहरी बौद्धजगत् से जिस प्रकार उपेक्षायुक्त नाता है, वह आश्चर्य की बात है।

संक्षेपतः इस्लाम के चार धर्म-स्कन्ध हैं—सोम (रमज़ान मास में उपवास), सलात् (प्रार्थना या नमाज़), हज्ज (कअ़्बा-यात्रा) और ज़कात् (दान) इन प्रधान (कर्मों) की पूर्ति के लिये क़ुर्बानी (बलिदान) आदि अंग कर्म हैं।

1—सर्वारि—सबका शत्रु, काम-मार।

हिन्दू धर्म में भी दो प्रकार के सिद्धान्त हैं एक क्रियात्मक, दूसरा विचारात्मक। उपरोक्त चार इस्लाम के क्रियात्मक सिद्धान्त हैं। जिस प्रकार यहाँ शास्त्रों में आपत् अनापत्काल, देश और व्यक्ति के अनुसार कठिन विधान को सरल करने, अथवा उसे सर्वथा छोड़ देने का विधान है, वैसे ही इस्लाम में भी। जिस प्रकार यहाँ धर्म के लिये श्रति, स्मृति और शिष्टाचार प्रमाण हैं, वैसे ही इस्लाम में भी 'क़ुरान', 'हदीस' तथा प्रेरित मुहम्मद और अन्य महापुरुषों के अनुष्ठान धर्म में प्रमाणभूत हैं। जिस प्रकार परस्पर विरोध में, शिष्टाचार से स्मृति बलवती, एवं स्मृति से श्रुति बलवती एवं स्वतः प्रमाण है, उसका एक-एक अक्षर प्रमाणभूत है। किन्तु स्मृति श्रुति के प्रतिकूल न होने पर ही प्रमाण है। इसी प्रकार इस्लाम में भी क़ुरान स्वतः प्रमाण है, 'हदीस' उसके प्रतिकूल न होने पर और शिष्टाचार उन दोनों से अविरोधी होने पर। मीमांसकों की भाँति इस्लाम के 'फ़िक़्'वेत्ताओं ने इन बातों पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। क़ुरान में जहाँ कहीं दो परस्पर विरुद्ध विधान मिलें, वहाँ उन्हें विकल्प से समझना चाहिए अर्थात् ईश्वरीय वाक्य होने से क़ुरान में यथार्थ विरोध कहीं माना ही नहीं जाता। स्वयं क़ुरान में कहा है—

धर्म में प्रमाण

"क्या क़ुरान पर विचार नहीं करते। यदि वह ईश्वर छोड़ किसी दूसरे की ओर से होता, तो अवश्य वह इसमें अधिक (परस्पर) विरोध पाते।" (४ : ११ : ५)

श्रुति-प्रतिपादित आज्ञा की भाँति क़ुरान की आज्ञा अनिवार्य है। किन्तु 'हदीस' के सभी विधानों पर इस्लाम के सब सम्प्रदाय एकमत नहीं हैं। इस्लाम में पक्के स्मार्त 'अहले-हदीस' (हदीस वाले) कहे जाते हैं। शिष्टाचारों में महात्मा मुहम्मद का आचरण सर्वोत्तम है। क़ुरान में कहा है—

"निस्सन्देह प्रभु-प्रेरित का पवित्राचरण तुम्हारे लिये अनुकरणीय है।" (३३ : २ : १)

.कुरान-प्रतिपादित धर्म-विधियों को छोड़कर 'हदीस' और 'शिष्टाचार' द्वारा प्रतिपादित धर्मविधियों पर सब मुसल्मानों का एकमत न होने तथा विवादग्रस्त होने से, हमने इस निबंध में सर्वथा .कुरान का ही आश्रय लिया है।

कर्मकाण्ड

रोज़ा (उपवास)

"हे विश्वासियो (मुसल्मानो)! पूर्वजों के समान तुमपर भी कुछ दिनों के लिये उपवास (रखने का विधान) लिखा गया है, जिसमें कि तुम संयमी हो। फिर जो कोई तुममें से रोगी हो या यात्रा में हो तो वह बदले में एक गरीब को भोजन देवे। जो .खुशी से शुभ कर्म करो तो वह मंगल है और यदि उपवास करो तो तुम्हारे लिये शुभ है, यदि तुम जानते हो।

"रमज़ान का मास पवित्र है, जिसमें, स्पष्ट, मार्गप्रदर्शक, मानव-शिक्षक, (सत्यासत्य) विभाजक, .कुरान उतारा गया। इसलिये तुममें से जो कोई रमज़ान महीने को प्राप्त हो, उपवास करे।" (२ : २३ : १-३)

यहाँ 'रमज़ान' महीने के उपवास की विधि है; तथा यह भी बताया गया है, कि रोगी और यात्री को क्या करना चाहिये।

नमाज़

नमाज़ (सलात्, प्रार्थना)—प्रत्येक मुसल्मान का नित्य कर्म है, जिसका न करनेवाला पाप-भागी होता है। कहा है—

"सलात और मध्य-सलात के लिये सावधान रहो। नम्रतापूर्वक परमेश्वर के लिये खड़े हो। यदि ख़तरे में हो तो पैदल या

सवार ही (उसे पूरा कर लो)। पुनः जब शान्त हो....तो प्रभु को स्मरण करो।' (३ : ३२ : ३-४)

'नमाज़' का स्थान इस्लाम में वही है, जो हिन्दू धर्म में संध्या या ब्रह्म-यज्ञ का। यद्यपि क़ुरान में 'पंचगाना' या पाँच वक़्त की नमाज़ का वर्णन कहीं नहीं आया है, किन्तु वह एक प्रकार से सर्वमान्य है। पंचगाना निमाज़ हैं—

(१) 'सलातुल्फ़ज्र' (प्रातः प्रार्थना) जो उषःकाल ही में करनी पड़ती है।

(२) 'सलातु-ज्ज़ोह्र' (मध्याह्नोत्तर तृतीय प्रहरारम्भिक प्रार्थना) यह दोपहर के बाद तीसरे पहर के आरम्भ में होती है।

(३) 'सलातुल्-अस्र' (मध्याह्नोत्तर चतुर्थ प्रहरारम्भिक प्रार्थना) यह चौथे पहर के आरम्भ में होती है।

(४) 'सलातुल्-मग़्रिब' (सान्ध्य-प्रार्थना) यह सूर्यास्त के बाद तुरन्त होती है।

(५) 'सलातुल्-इशा' (रात्रि प्रथमयाम प्रार्थना) रात्रि में पहिले प्रहर के अन्त में होती है।

इनके अतिरिक्त अधिक श्रद्धालु पुरुष, 'सलातुल्लैल' (निशीथ-प्रार्थना) और 'सलातुज्ज़ुहा' (दिवा प्रथमयाम प्रार्थना) भी करते हैं, जो क्रमशः रात के चौथे पहर के आरम्भ तथा पहर भर दिन चढ़े की जाती हैं।

नमाज़ के लिये खड़ा होने से पहिले निम्न क्रम से 'वज़ू' (अंग-शुद्धि) करनी चाहिये—

(१) दोनों कलाई धोना।

(२) दातवन या केवल जल से मुख धोना।

(३) पानी से नाक का भीतरी भाग धोना।

(४) चेहरा धोना।

(५) केहुनी तक हाथ धोना।

(६) दोनों भीगे हाथ मिलाकर तर्जनी, मध्यमा और अना-मिका से सिर पोछना ।

(७) गुल्फ पर्यन्त पैर धोना, पहिले दाहिना फिर बायाँ। सोने और पेशाब पायखाने के बाद फिर से 'वज़ू' की आवश्य-कता होती है, अन्यथा एक बार का किया ही काफ़ी है। 'मैथुन' के बाद केवल 'वज़ू' से काम नहीं चलता, उस समय पूर्ण स्नान करना चाहिये। जल न मिलने पर अथवा बीमार होने पर शुद्ध सूखी मिट्टी हाथ में लगाकर सिर, मुख और करपृष्ठ पर फिरा देना चाहिये। इसे 'अरबी' में 'तयम्मुम्' कहते हैं। शुद्धि के विषय में क़ुरान इस प्रकार कहता है—

"हे विश्वासियो मुसल्मानो ! जब तक जो कुछ तुम कहते हो उसे नहीं समझते, या तुम नशा में हो, अथवा यात्रा में न होने पर भी अशुद्ध हो, तब तक नमाज़ में न जाओ, जब तक कि तुम स्नान न कर लो। यदि रोगी या यात्री की अवस्था में मलोत्सर्ग या स्त्री-स्पर्श किया, और जल न मिला; तो शुद्ध मिट्टी ले उसे हाथ-मुँह पर फेरो।" (४ : ७ : १)

नमाज़ के दो प्रकार हैं, जिन्हें 'फ़र्द' (वैयक्तिक) और सुन्नत (सामूहिक) कहते हैं। 'इलाम' (नमाज़ पढ़ानेवाले अगुआ) के पीछे पढ़े जानेवाले भाग को 'सुन्नत' और अकेले पढ़े जाने-वाले को 'फ़र्द' कहते हैं। समूह के साथ 'नमाज़' पढ़ने में जो किसी कारण से असमर्थ है, उसके लिये 'सुन्नत' भी 'फ़र्द' हो जाती है। प्रत्येक नमाज़ कुछ 'रक़ात' पर निर्भर हैं। जितना जप करके एकबार भूमि में सिर रख नमन किया जाता है, उसे रक़ात कहते हैं।

(१) सवेरे की नमाज़ में दो 'रक़ात' सामूहिक और दो वैयक्तिक हैं।

(२) एक बजे की नमाज़ अपेक्षाकृत कुछ लम्बी होती है। इसमें पहिले चार या दो 'रक़ात' वैयक्तिक, मध्य में चार 'रक़ात' सामूहिक और अन्त में दो 'रक़ात' वैयक्तिक जपने पड़ते हैं। शुक्रवार के दिन की बड़ी साप्ताहिक नमाज़ इसी समय पड़ती है। किन्तु इसमें चार 'रक़ात' सामूहिक के स्थान पर दो ही पढ़ना पड़ता है, बाक़ी दो के स्थान पर 'इमाम' का 'ख़ुत्बा' या उपदेश होता है, जिसे सब लोग सावधान हो सुनते हैं !

(३) चार बजे की नमाज़ में चार 'रक़ात' सामूहिक पढ़ी जाती हैं।

(४) सांध्य नमाज़ में तीन 'रक़ात' वैयक्तिक पढ़ने के अनन्तर दो 'रक़ात' सामूहिक पढ़ना पड़ता है।

(५) नौ बजे रात की नमाज़ में चार 'रक़ात' वैयक्तिक, पुनः दो 'रक़ात' सामूहिक, पीछे फिर 'वित्र' नामक तीन 'रक़ात' वैयक्तिक पढ़ी जाती हैं।

निशीथ-प्रार्थना में आठ 'रक़ात' वैयक्तिक होती हैं।

सवेरे नौ बजे की नमाज़ में दो या चार रक़ात वैयक्तिक होती हैं।

'ईद' की नमाज़—जो वर्ष में एक बार ही पढ़ी जाती है—में दो 'रक़ात' सामूहिक होती हैं, फिर उपदेश होता है।

यात्राकाल में सवेरे की नमाज़ छोड़कर बाक़ी सभी नमाज़ों में सामूहिक 'रक़ात' भी वैयक्तिक हो जाती हैं, तथा द्वितीय, तृतीय और पञ्चम की चार 'रकात' में वैयक्तिक दो ही रह जाती हैं। यदि यात्रा लगातार चार दिन से अधिक की हो, तो सभी नमाज़ों का पढ़ना कर्त्तव्य है। यदि दो या इससे अधिक नमाज़ पढ़नेवाले हों तो उन्हें अपने में से एक को 'इमाम' (नमाज़ पढ़ानेवाला अगुआ) बना लेना चाहिये।

नीचे नमाज़ में पढ़े जानेवाले मूल अरबी वाक्य, हिन्दी अनुवाद के साथ दिये जाते हैं।

नमाज़ के समय की सूचना देने के लिये एक आदमी जिसे 'मुअज़्ज़िन्' कहते हैं—'क़ाबा' की ओर मुख करके ऊँचे स्वर से कहता है* ।—

(१) † 'अल्लाहु-अक्बर' (परमेश्वर अत्यन्त महान् है) [यह चार बार]

(२) 'अशहदो अँल्ला-इलाह इल्लल्लाह'। (साक्षी देता हूँ कि परमेश्वर के सिवाय कोई पूज्य नहीं) [दो बार]।

(३) "अशहदो अन्न मुहम्मदन् रसूलल्लाहि।" साक्षी देता हूँ कि मुहम्मद ईश्वर का दूत है) [दो बार]।

(४) "हय्य अलस्सलात्।" (आओ नमाज़ में) [दाहिने ओर मुँह करके दो बार]

(५) "हय्य अलल्-फलाह।" (भलाई की ओर आओ) [बाईं ओर मुँह करके दो बार]

(६) "अल्लाहु अक्बर।" [दो बार]

(७) "ला इलाह इल्ल-ल्लाह।" (परमेश्वर के सिवाय दूसरा पूज्य या ईश्वर नहीं)।

सवेरे की नमाज़ में (५) के बाद यह वाक्य कहा जाता है "अस्सलातो खैरुन् मिनन्नौम्" (नमाज़ निद्रा से श्रेष्ठ है) [दो बार]।

नमाज़ के लिये खड़े होने को 'इक़ामत' कहते हैं। 'इक़ामत' में (१) से (५) तक के वाक्यों को एक-एक बार पढ़ने के बाद इसे दो बार पढ़ते हैं—

---

* इसे 'अज़ान' (आह्वान) कहते हैं।

† इसे ही 'तक्बीर-तहीम' (पवित्र माहात्म्योच्चारण) कहते हैं।

"क़द् क़ामतिस्सलात" (नमाज़ आरम्भ हुई)। 'ईद' की नमाज़ में 'अज़ान' और 'इक़ामत के स्थान पर (१) ही को सात बार पहिली 'रक़ात' में पढ़ते हैं, तथा दूसरी 'रक़ात'—'पवित्र माहात्म्योच्चारण' के बाद, इसे पाँच बार जपते हैं। शुक्र की नमाज़ में 'अज़ान' दो बार होती है। यह दूसरी 'अज़ान' 'इमाम' के उपदेश के प्रारम्भ में उसकी सूचना के लिये दी जाती है।

१—'क़ाबा' मुख हो, दोनों हाथों को कान तक उठाकर खड़े हुए 'अल्लाहु-अकबर' कहना।

२—'क़ियाम' (उत्थान)—बायें कर पृष्ठ पर दाहिनी हथेली को रख छाती या नाभी से लगाये हुये पढ़ना—

"इन्नी वज्जहतो लिल्लज़ी फ़तरस्समावाति वल्-अर्ज़हनोफ़न्, व मा अना मिनल्मुश्रिकीन्। इन्नी सलाती व नुसुकी व मह्याय व ममाती लिल्लाहि रब्बिल्-आलमीन्। ला-शरीक लहु व बिज़ालिक उमिर्तु, व अना मिनल्-मुस्लिमीन्। अल्लाहुम्म ! अन्तल्मलिको ला इलाह इल्ला अन्त, अन्त रब्बी व आना अब्दुक ज़लम्तु नफ़्सी वअ्तरफ्तु बिज़न्बी, फ़-अग़फ़िर् ली ज़ुनूबी जमीअ़न्, इन्नहु ला-यग़फ़िरुज़्ज़ुनूब इल्ला अन्त, व'हदिनी अह्सनल्-अख़्लाक़ि ला यह्दी लिअह्सनिहा इल्ला अन्त, वस्रिफ़ अ़न्नी सय्यिअहा ला यस्रिफ़ु अ़न्नी सय्यिअहा इल्ला अन्त।"

(एकेश्वर विश्वासी मैंने उसकी ओर मुँह किया, जो भूमि और आकाश का कारण है। मैं अनेकों ईश्वर माननेवालों में से नहीं हूँ। निस्सन्देह, मेरी प्रार्थना, मेरी बलि, मेरा जीवन और मरण जगदीश्वर स्वामी के लिये है। उस (परमेश्वर) का को साझी नहीं, उसी से आज्ञा हुई, और मैं मुसल्मान हूँ। हे परमेश्वर ! तू मालिक है, तेरे बिना दूसरा ईश्वर नहीं, तू मेरा स्वामी है और मैं तेरा सेवक। मैंने अपने ऊपर अन्याय किया, मैंने

अपने अपराध को स्वीकार किया। तू मेरे अपराधों को क्षमा कर, निस्सन्देह तेरे सिवाय कोई अपराध क्षमा करनेवाला नहीं। मुझे उत्तम आचार सिखा; क्योंकि, तेरे अतिरिक्त कोई उन उत्तम आचारों को नहीं सिखाता। मुझसे दुराचारों को परे हटा, क्योंकि तेरे अतिरिक्त कोई उन दोषों को हटा नहीं सकता।'

निम्न प्रार्थना भी बहुधा की जाती है—

"सुब्हानक अल्लाहुम्म ! व बिहम्दिक, व तबारक'स्मुक, व तआला जद्दुक, व ला इलाह ग़ैरुक, अऊज़ु बिल्लाहि मिन-श्शैतानिर्रजीम्।"

[मंगल हो तेरा हे महाप्रभो ! तेरी स्तुति और तेरा नाम मंगलमय है, और तेरा माहात्म्य उत्तम है, तेरे अतिरिक्त (दूसरा कोई) पूजनीय नहीं, दुष्ट शैतान से (बचने के लिये) मैं तुझ महाप्रभु की शरण लेता हूँ।]

'बि'-स्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम्। अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल्-आलमीन्। अर्रह्मानिर्रहीम्। मालिकि यौमिद्दीन्। इय्याक नअ्-बुदु व इय्याक नस्तईन्। इह्दिन्-स्सिरातल्मुस्तक़ीम्। सिरातल्ल-ज़ीन अन्अम्त अलैहिम्, ग़ैरिल्मग़ज़ूबि अलैहिम् व लज़्ज़ा-ल्लीन्। आमीन्'

[परम कृपालु दयामय ईश्वर के नाम से (आरम्भ करता हूँ)। प्रशंसा जगदीश्वर स्वामी के लिये है, जो परम कृपालु, दयालु हैं; जो 'न्यायदिवस' (क़यामत) का स्वामी है। (प्रभो !) तेरी ही हम सेवा करते हैं, और तुझी से सहायता माँगते हैं। हमें सीधे मार्ग का आदेश कर। उनके मार्ग का (आदेश कर) जिन पर कि तूने कृपा की; उनके (मार्ग) का नहीं, जिन पर कि तेरा कोप हुआ, या जो कि पथ-भ्रष्ट हैं। एवमस्तु]

पुनः 'क़ुरान' का कोई कण्ठस्थ भाग जपा जाता है। विशेष-

कर 'सूरत' (अध्याय) 'इख़्लास', जिसे हम अनुप्रास के दृष्टान्त के लिये द्वितीय विन्दु में उद्धृत कर चुके हैं।

३—तब नमाज़ी, 'अल्लाहु अकबर' कहते हुए अपने मस्तक को यहाँ तक झुकाते हैं, कि हाथ ठेहुने पर पहुँच जाता है। इसी को 'रुकूअ़' (=झुकना) कहते हैं। अब कम से कम तीन बार पढ़ते हैं—

"सुब्हान रब्बिय-ल्-अ़ज़ीम्।" (महाप्रभु का मंगल हो)। इसके बदले या इसके साथ में कोई कोई इसे पढ़ते हैं—

"सुब्हानक अल्लाहुम्म ! रब्बना व बिहम्दिक अल्लाहुम्म ! अग़फ़िर् ली।" (हे महाप्रभो ! तेरे लिये मंगल है, मेरे स्वामी ! तेरे लिये स्तुति है, हे परमेश्वर ! मुझे क्षमा कर)।

४—फिर निम्न वाक्यों को उच्चारण कर गर्दन सीधी करके खड़ा रहना होता है—

"समिअ़ल्लाहु लिमन् हमिदः" (जो उसकी स्तुति करता है प्रभु उसे सुनता है।)

"रब्बना ! व लक-ल्-हम्दु" (हे मेरे स्वामी ! स्तुति तेरे लिये है।)

५—पुनः निम्न वाक्य को कम से कम तीन बार बोलते हुए, 'सिज्दा' (प्रणाम) करना, अर्थात् इस प्रकार प्रणाम करना कि पैर के पंजे, घुटने दोनों हाथ और ललाट भूमि को छुएँ।

"सुब्हान रब्बियल् अअ़्ला" (मेरे सबसे ऊँचे स्वामी के लिये मंगल हो।)

इसके साथ या बदले में निम्न वाक्य भी कहा जाता है—

"सुब्हानकल्लाहुम्म ! रब्बना व बिहम्दिकल्लाहुम्म !—ऽग़फ़िर्ली" (महाप्रभो ! मंगल तेरे लिये है, स्तुति तेरे लिये है, हे परमेश ! त्राहि माम्।)

६—फिर 'जल्सा'—अर्थात् दोनों पैर पीछे मोड़ कर बैठ जाना।

७—तदनन्तर फिर 'सिज्दा' (प्रणाम) ऊपर लिखे क्रम से करता है।

इतना हो जाने पर एक 'रक़ात' (नमन) पूरी होती है। अब उपासक फिर दूसरी 'रक़ात' के लिये खड़ा होता है। सब बातें ऊपर लिखे ही क्रम से अबकी बार भी करनी पड़ती हैं।

८—'क़ुअ़्दा' (बैठना)—दूसरी 'रक़ात' के बाद बैठे ही बैठे निम्न वाक्य पढ़ता है—

"अत्तहिय्यातु लिल्लाहि वस्सलातु वत्तय्यिबातुस्सलामु अ़लैक अय्युहन्नबिय्यु ! व रह्म़तुल्लाहि व बरकातुहुस्सलामु अ़लैना व अ़ला इबादिल्लाहि-स्सालिहीन, अश्हदु अन् लाइलाह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन्न मुहम्मदन् अ़ब्दुहु व रसूलहु" [सारी प्रार्थनाएँ, नमाज़ें और पवित्रताएँ ईश्वर के लिये हैं, हे नबी ! (मुहम्मद !) तुझ पर शान्ति और ईश्वर की कृपा व आशीष हो। हम पर और ईश्वर के भले भक्तों पर शान्ति हो। साक्षी देता हूँ ईश्वर के सिवा कोई पूजनीय नहीं; और साक्षी देता हूँ कि 'मुहम्मद' उसका सेवक और दूत है।]

९—दो से अधिक 'रक़ात' पढ़ना हो तो फिर खड़ा होकर पूर्ववत् आरम्भ किया जाता है। फिर बैठे ही बैठे निम्न प्रार्थना करता है—

'अल्लाहुम्म ! सल्लि अ़ला-मुहम्मदिन्, व अ़ला-आलि-मुहम्मदिन् कमा सल्लैत अ़ला-इब्राहीम व अ़ला-आलि-इब्राहीम, इन्नक हमीदुन् मजीदन्। अल्लाहुम्म ! बारिक् अ़ला-मुहम्मदिन् व अ़ला-आलिमुहम्मदिन् कमा बारक्त अ़ला-इब्राहीम व अ़ला-आलि-इब्राहीम इन्नक हमीदुन्मजीद्।' (हे प्रभो ! मुहम्मद को शान्ति दे, उसकी सन्तान को शान्ति दे; जैसे कि तूने इब्राहीम

तथा इब्राहीम-सन्तति को शान्ति दी, निस्सन्देह तू ऊँची प्रशंसा-वाला है। हे प्रभो! मुहम्मद और उसकी सन्तान को आशीर्वाद दे, जैसे कि तूने इब्राहीम और उसकी सन्तति को दिया, निस्सन्देह तू ऊँची प्रशंसावाला है।)

निम्न प्रार्थना और जोड़ी जाती है—

"अल्लाहुम्म! इन्नी जल्लम्तु नफ़्सी ज़ुल्मन् कसीरन्, व ला यग़्फिरुज़्ज़ुनूब इल्ला अन्त फ़ग़्फ़र्ली मग़्फिरतुन् मिन् इन्दिक वर्हम्नी इन्नक अन्तल्-ग़फ़ूरुर्रहीम्।"

(हे महाप्रभो! मैंने अपने पर बड़ा भारी अन्याय किया और तेरे सिवाय कोई अपराध क्षमा नहीं कर सकता; अतः मुझे अपने पास की क्षमा से माफ़ कर; तू क्षमाशील और कृपालु है, मुझ पर कृपा कर)।

अथवा इसके स्थान पर निम्न प्रार्थना—

"रब्बिज्अल्नी मुक़ीमुस्सलाति व मिन् ज़ुरिय्यती रब्बना व तक़ब्बल् दुआअ। रब्बन'ग़्फ़िर्ली व लिवालिदय्य व लिल् मोमिनीन यौम यक़ूमुल्हिसाब" (मेरे स्वामिन्! मुझे और मेरा सन्तान को नमाज़ में खड़ा होनेवाला बना। मेरी प्रार्थना स्वीकार कर। मेरे स्वामिन्! मुझे और मेरे पिता और विश्वासियों को लेखा के दिन क्षमा कर।)

१०—अन्त में दाहिनी और बाईं ओर मुँह फेर कर प्रतिबार निम्न वाक्य कहते ए 'नमाज़' समाप्त की जाती है—

"अस्सलामु अलैकुम् व रहमतुल्लाहि' (तुम पर शान्ति और प्रभु की कृपा हो)।

कोई-कोई निम्न 'क़ुनूत' नामक प्रार्थना भी करते हैं—

"अल्लाहुम्म!' हदिनी फ़ीमन् हदैत व आफ़िनी फ़ीमन् आफ़ैत, व तवल्लनी फ़ीमन् तवल्लैत, व बारिकी फ़ीमा अअ्तैत

वक़िनी शर्र मा क़ज़ैत फ़ इन्नक तक़्ज़ी व ला युक़्ज़ा अ्लैक इन्नहु ला यज़िल्लु मँव्वालैत तबारक्त रब्बना व तआ्लैत"

(जिनको तूने रास्ता दिखलाया, प्रभो ! मुझे उनमें मार्ग दिखा, जिन्हें तूने क्षमा की मुझे उनमें रख, जिन्हें तूने मित्र बनाया मुझे उनमें मित्र बना, जिनमें तूने मंगल प्रदान किया, मुझे मंगल दे, हो गये पापों से मुझे बचा, निस्सन्देह तू ही निर्णय (फ़ैसला) करता है तेरे पर कोई निर्णय नहीं कर सकता है। सचमुच वह अकीर्तिमान् नहीं होता जिसे तू मित्र बनाता है। मेरे स्वामिन् ! तू मंगलमय और महान् है) ।

उपरोक्त के स्थान पर कोई-कोई निम्न प्रार्थना करते हैं।

"अल्लाहुम्म ! इन्ना नस्तईनुक व नस्तग़्फ़िरुक व नोमिनु बिक व नतवक्कलु अ्लैक व नुसिनी अ्लैकल्ख़ैर व नश्कुरुक व ला नुक्फ़ुरुक व नख़्लउ व नत्रुकु मँय्यफ़्जुरुक, अल्लाहुम्म ! इय्याक नअ्बुदु व लक नुसल्ली व नस्जुदु व इलैक नस्आ व नह्फ़िदु व नर्जु रह्मतक व नख़्शा अज़ाबक बिल्कुफ़्फ़ारि मुल्हिक़्, [हे महाप्रभो ! हम तुझी से सहायता और क्षमा चाहते हैं; तेरे पर विश्वास व भरोसा करते हैं। हम तेरा शुभाह्वान करते हैं, तेरा धन्यवाद देते हैं, अस्वीकार नहीं करते। जो तेरी आज्ञा नहीं मानता हम उसे पृथक् और परित्याग करते हैं। परमेश ! तेरी ही सेवा करते हैं, और तेरे लिये नमन=प्रणति करते हैं, तेरी ओर दौड़ते हैं और तेज़ हैं, और तेरी कृपा की आशा रखते हैं, तेरे कोप से डरते हैं, निस्सन्देह अविश्वासियों (काफ़िरों) को तेरा कोप मिलनेवाला है।]

नमाज़ का माहात्म्य स्वयं क़ुरान में कहा गया है—

"निस्सन्देह 'सलात्' (नमाज़) कुकर्म और निर्लज्जता से रोकती है, ईश्वर का स्मरण सर्वश्रेष्ठ है।" (२९ : ५ : १)

क़ाबा

जैसा उच्च भाव और ईश्वर के प्रति प्रेम नमाज़ (=नमस्) की उपरोक्त प्रार्थनाओं से वर्णित है, पाठक उस पर स्वयं विचार कर सकते हैं। सांघिक-नमाज़ का इस्लाम में बड़ा मान है। वस्तुत: वह संघशक्ति को बढ़ानेवाला भी है। सहस्रों एशिया, योरुप और अफ्रीका-निवासी मुसल्मान जिस समय एक ही स्वर, एक ही भाषा और एक ही भाव से प्रेरित हो ईश्वर के चरणारविन्द में अपनी भक्ति-पुष्पांजलि अर्पण करने के लिये एकत्रित होते हैं, तो कैसा आनन्दमय उत्साह-पूर्ण दृश्य होता है। उस समय की समानता का क्या कहना। एक ही पंक्ति में दरिद्र और बादशाह दोनों खड़े होकर बता देते हैं, कि ईश्वर के सामने सब बराबर हैं।

इस्लाम के चार धर्म-स्कन्धों में 'हज्ज' या 'काबा' यात्रा भी एक है। 'क़ाबा' अरब का प्राचीन मंदिर है जो मक्का-शहर में है। विक्रम की प्रथम शताब्दी के आरम्भ में रोमक इतिहास-लेखक 'द्यौद्रस् सक्लस्' लिखता है—

"यहाँ इस देश में एक मन्दिर है, जो अरबों का अत्यन्त पूजनीय है।"

महात्मा मुहम्मद के जन्म से प्राय: ६०० वर्ष पूर्व ही इस मन्दिर की इतनी ख्याति थी कि 'सिरिया', 'अराक़' आदि प्रदेशों से सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष दर्शनार्थ वहाँ जाया करते थे। पुराणों में भी शिव के द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में मक्का के महादेव का नाम आता है। हज्र् ल्-अस्वद् (=कृष्ण-पाषाण) इन सब विचारों का केन्द्र प्रतीत होता है यह काबा की दीवार में लगा हुआ है। आज भी उस पर चुम्बा देना प्रत्येक 'हाजी' (मक्कायात्री) का कर्त्तव्य है। यद्यपि क़ुरान में इसका विधान नहीं, किन्तु पुराण

के समान माननीय 'हदीस' ग्रन्थों में उसे भूमि पर भगवान् का दाहिना हाथ कहा गया है। यही मक्केश्वरनाथ हैं जो काबा की सभी मूर्तियों के तोड़े जाने पर भी स्वयं ज्यों के त्यों विद्यमान हैं; इतना ही नहीं, बल्कि इनका जादू मुसल्मानों पर भी चले बिना नहीं रहा, और वह पत्थर को बोसा देना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं, यद्यपि अन्य स्थानों पर मूर्तिपूजा के घोर विरोधी हैं। इस पवित्र मंदिर के विषय में .क़ुरान में आया है—

"निस्सन्देह पहिला घर मक्का में स्थापित किया गया, जो कि धन्य है तथा ज्ञानियों के लिये उपदेश है।" (५ : १३ : ४)

"महाप्रभु ने मनुष्यों के लिये पवित्र गृह 'कअ़्बा' बनाया।" (५ : १३ : ४)

जिस प्रकार यहाँ काबा के लिये 'पहिला घर' और 'पवित्र गृह' कहा गया है, उसी प्रकार मक्का नगर के लिये भी उम्मुल्क़ुरा (ग्रामों की माँ) अथवा पहिला गाँव शब्द आया है। पहिले कह आये हैं कि उस समय मक्का के मंदिर में ३६० मूर्तियाँ थीं। आरम्भ में जब 'किधर मुख करके नमाज़ पढ़ी जाय' यह प्रश्न महात्मा मुहम्मद के सम्मुख आया; तो एकेश्वर भक्त महात्मा ने सारे अरब के श्रद्धास्पद किन्तु मूर्तिपूर्ण मक्का-मंदिर को अयोग्य समझ, अमूर्तिपूजक एकेश्वर-भक्त यहूदियों के मुख्य स्थान 'योरुशिलम्'-मंदिर की ओर ही मुख करके नमाज़ पढ़ने की आज्ञा अपने अनुयायियों को दी। इस प्रकार मक्का-निवास के अन्त तक अर्थात् तेरह वर्ष इसी प्रकार नमाज़ पढ़ी जाती रही। मदीना में आने पर भी कितने ही दिनों तक 'योरुशिलम्' की ओर ही मुख करके नमाज़ पढ़ी जाती रही। अन्त में यहूदियों के अभिमान—हमारे ही काबा का आश्रय मुहम्मद के अनुयायी भी करते हैं—को हटाने के लिये .क़ुरान के निम्न आदेश के

अनुसार पवित्र काबा मंदिर ही मुसल्मानों का क़िब्ला (अग्रिम स्थान) हुआ। उक्त वाक्य यह है—

"अनजान लोग कहेंगे इन (मुसल्मानों) को क्या बात थी जिसने कि उन्हें किब्ला से फेर दिया। कह (हे मुहम्मद !) ईश्वर के लिये पूर्व-पश्चिम सब समान है।" (२ : १७ : १)

"हम तेरे मुख को (हे मुहम्मद !) उठा देखते हैं। अवश्य तुझे हम उस किब्ला की ओर फेरेंगे जो तुझे अभीष्ट है। सो जहाँ तुम रहो वहाँ से अपने मुँहों को पवित्र मस्जिद (काबा) की ओर फेर लो। और वह लोग जिनको पुस्तक (तौरेत) दी गई (अर्थात् यहूदी) निस्सन्देह जानते हैं, कि उनके ईश्वर की ओर से यही ठीक है।" (२ : १७ : ३)

"यदि तू सम्पूर्ण प्रमाण लावे, तब भी किताबवाले (यहूदी) तेरे 'किब्ले' के अनुयायी न होंगे, और न तू उनके क़िब्ले का अनुयायी हो।" (२ : १७ : ४)

प्रथम वाक्य में 'क़िब्ला' बदलने पर होनेवाले आक्षेप का उत्तर दूसरे और तीसरे में बदलने का विधान किया गया है। यह 'क़िब्ला' का विधान भी वास्तव में सारे मुसल्मानों की एकता के अभिप्राय से किया गया है। वास्तव में तो—"प्रभु तेरे लिये ही पूर्व और पच्छिम है। जिस ओर मुख फेरो उधर ही प्रभु का मुख है। निस्सन्देह परमात्मा विशाल और ज्ञानी है।" (२ : १४ : ३)

हज्ज

"मनुष्यों को 'हज्ज' के लिये बुला, कि तेरे पास दूर से पैदल और ऊँटों पर चले आवें।" (२२ : ४ : २)

"भगवान् के लिये 'हज्ज'* और 'उम्रा'* पूरा करो। और यदि (किसी प्रकार) रोके गये, तो यथाशक्ति बलिदान (.क़ुर्बानी) करो। जब तक बलि ठिकाने पर न पहुँच जाय शिर की हजामत न बनवाओ। और जो तुममें से रोगी हो या जिसके शिर में पीड़ा हो, तो इसके बदले उपवास करे, या दान देवे, या बलिदान करे। जब तुम सकुशल हो तो जो कोई हज्ज के साथ 'उम्रा' चाहे यथाशक्ति बलि भेजे, और जो न पाये तो तीन दिन का उपवास हज्ज के समय में, और सात उपवास जब लौटकर जाये, यह पूरे दश (उपवास) उन लोगों के लिये हैं, जिनके घर 'काबा' के पास नहीं हैं।" (२ : २४ : ८)

आवश्यक न होने से 'तवाफ़' (परिक्रमा) 'सफ़ा', 'मर्वा' पहाड़ियों के बीच में कंकड़ी फेंकते दौड़ना जिसे 'सई़' कहते हैं—आदि विधियाँ यहाँ नहीं लिखी जातीं।

क़ुर्बानी (बलिदान)

'.क़ुरान' के अनुसार काल तथा अन्य पर्वों में 'हज्ज' विदित है। इस्लाम की .क़ुर्बानी कोई नई चीज़ नहीं है। इष्टों और देवताओं को पशु का बलिदान करना बहुत पुराने समय से चला आता है। विक्रमपूर्व अष्टम शताब्दी में, 'तिग्लत्पेशर्' और 'शल्मेशर' 'असुर'-राजाओं के इष्ट 'सक्कथ-बेनथ' बबेरु (बाबुल) नगर के विशाल मन्दिर में बैठे बलि ग्रहण करते थे। 'नर्गल्', 'अशिम्', 'निभज्', 'तर्तक्', 'अद्रम्लेश', 'अम्लेश', 'नाशरश', 'देगन' आदि देव-समुदाय विक्रम से अनेक शताब्दियाँ पूर्व आधुनिक लघु एशिया के पुराने नगरों 'कथ', 'हामा', 'अलित' 'सफर्वेम्' में रहते हुए बलि ग्रहण करते थे। मूर्तिपूजक-समुदाय

*नियमित समय में काबा यात्रा करना हज्ज कहलाता है। और उसके अतिरिक्त अन्य समयों में वही 'उम्रा' है।

तो प्राय: सारा ही इस पशुबलि-क्रिया में अत्यन्त श्रद्धालु देखा जाता है; किन्तु अमूर्तिपूजक धर्म भी इससे वञ्चित नहीं रहा। यहूदियों की भव्य वेदियाँ सदा पशु-रक्त से रंजित रहती रही हैं। उनकी शुष्क और दग्ध बलियाँ 'बाइबिल' पढ़नेवालों को अविदित नहीं। इस्लाम ने अधिकांश यहूदी सिद्धान्तों को ज्यों का त्यों या कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण कर लिया। बलि का सिद्धान्त भी उसी प्रकार यहूदी धर्म से लिया गया है। यहाँ दोनों की बलि के विषय में समता दिखाने के लिये 'तौरेत' और 'क़ुरान' दोनों से कुछ वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

"That will offer has oblation for all his vows or for all his freewill offerings, which they will offer unto the lord for a burnt offering. Ye shall offer at your own will a male without blemish, of the beeves, of the sheep, or of the goats. Blind or broken or maimed, or having a wen, scurvey or scubbed, ye shall not offer these unto the Lord, nor make an offering by fire of them upon the alter unto the Lord..........Ye shall not offer unto the Lord, that which is bruised, or crushed, or broken or cut"

(Leviticus 22 : 20-24)

"जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा कि परमेश्वर तुमको आज्ञा देता है कि एक गौ बलि चढ़ाओ..........(वह) बोले— अपने ईश्वर से हमारे लिये पूछ कि, हमें बतावे—वह कैसी (हो)। कहा—(ईश्वर) आज्ञा देता है कि वह गौ न वृद्धा और न ब्याई हो, दोनों के बीच की हो। सो जिसके लिये आज्ञा दी

गई उसे करो। बोले—अपने ईश्वर से पूछ उसका रंग कैसा हो। बोला—वह (ईश्वर) कहता है, पीला चमकीला रंग जो देखनेवाले को पसन्द हो। बोले—अपने ईश्वर से पूछ, किस प्रकार की गाय हो। बोला—कहता है, ऐसी गौ नहीं, जो कि परिश्रम करनेवाली खेत जोतती, या खेत सींचती है। जो पूरे अंगवाली बेदाग़ हो।" (२ : ८ : ६-९)

इस प्रकार यहूदियों और .क़ुरान का बलिदान एक-सा होने पर, कुछ विभिन्नतायें भी रखता है। जहाँ यहूदी-शास्त्रानुसार मारने के बाद पशु-मांस हारूनवंशीय प्रधान पुरोहित तथा अनेक सहायक पुरोहितों द्वारा आग में होम किया जाता है। वहाँ .क़ुरान के अनुसार ईश्वर के नाम पर पशु-हनन करने मात्र से सब विधि समाप्त हो जाती है। सारांश यह कि यहूदी लोगों की बलि पुराने याज्ञिकों का पशुयाग—गोमेध आदि है। और इस्लाम की बलि काली दुर्गा आदि को चढ़ाई जानेवाली बलि के समान है। वस्तुतः पार्सीयों के निरामिष शुद्ध वानस्पत्य हवन में, आमिष हवन और बढ़ा देने पर यहूदियों की बलि होतो है। इस्लाम ने हवन का अड़ंगा हटा कर केवल मांस बलि मात्र रहने दिया।

'.क़ुरान' में यद्यपि .क़ुर्बानी का वर्णन आया है, किन्तु कहीं-कहीं उसे सर्वोपरि पुण्य कर्म मानने से इन्कार भी किया गया है एक जगह कहा है—

"परमेश्वर को उन (बलियों) का मांस और रक्त नहीं पहुँचता, बल्कि तुम्हारा संयम पहुँचता है।" (२२ : ५ : ४)

यथार्थ में इस्लाम की .क़ुर्बानी वही 'सुन्नते-इब्राहीम' (इब्राहिमी रीति) और 'शरीअ़त-मूसवी' (मूसा के सम्प्रदाय) का अनुगमन मात्र है। प्राचीनकाल से आई हुई प्रथाओं का एकदम परित्याग करना बड़े-बड़े संशोधकों के लिये भी कठिन काम है। महात्मा मुहम्मद को 'अरब'-निवासियों के श्रद्धास्पद 'काबा' ही

को नहीं अपनाना पड़ा; बल्कि, उनकी बहुत-सी रीतियों को भी लेना पड़ा जैसे—

१—'इह्राम्'—मक्का-प्रवेश से दूर ही एक स्थान पर सब हाजी एक ही कपड़ा तर-ऊपर करके पहिनते हैं।

२—'तवाफ़'—'काबा' की परिक्रमा।

३—'सई़'—'सफ़ा' और 'मर्वा' की पहाड़ियों के बीच दौड़ना।

४—'अर्फ़ात'—एक (विशेष) स्थान पर ठहराना।

उक्त चार बातें मूर्तिपूजक अरबों में भी ज्यों की त्यों थीं। 'काले-पत्थर' (हज्र् उल्-अस्वद) का चूमना भी पहिले ही से जारी मालूम होता है। खलीफ़ा उमर ने काले पत्थर के विषय में कहा था—

"निस्सन्देह मैं जानता हूँ कि तू पत्थर है। संसार में तू भला-बुरा कुछ नहीं कर सकता। यदि नबी (मुहम्मद) को तुझे चूमते देखा न होता, तो मैं भी तुझे न चूमता। (मिश्कात्)

'काबा में वहाँ की मूर्तियों के नाम से बलिदान पहिले भी होता था। क़ुरान ने उसे मूर्तियों के नाम से न करके ईश्वर के नाम से करने का आदेश दिया।

ऊपर प्रसंगवश 'रोज़ा' आदि के प्रकरण में दान या 'ज़कात्' का वर्णन आ ही चुका है। अतः इस विषय पर विशेष लिखना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। दान-धर्म पर '.क़ुरान' किसी धर्म-ग्रन्थ से कमज़ोर नहीं देता। अतिथि-सेवा, भिक्षुकों, अनाथों को भोजन देना, अरब-निवासियों का पहिले ही से स्वभाव था। लूट-पाट खून-खराबी यद्यपि अरबों की प्रकृति में थी, किन्तु तब भी वह इन बातों में बढ़े-चढ़े थे।

मूर्तिपूजा-खण्डन

मनुष्य जिसे शुभ-कर्म समझता है, करता कराता है; और जिसे अशुभ; उसे न कराने और न करने देने का प्रयत्न करता है। ऊपर शुभ कर्मों का वर्णन किया जा चुका है। अशुभ कर्मों में '.कुरान' मूर्ति-पूजा को भी परिगणित करता है। अतः उसके विषय में यहाँ कुछ वर्णन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

विक्रम से कई शताब्दियों पूर्व मिश्र, असुर, कल्दान, फ़िलस्तीन, मिडिया, यवन, रोम आदि देशों में अनेक देवी देवों की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। अरब में भी ऐसे अनेक देवालय थे जिनमें मक्का का 'काबा'-मन्दिर सर्वश्रेष्ठ था।

'वद्द, 'सुवाअ', 'यग़ूस', 'यऊक़', 'नस्र' (७२ : २ : ३) तथा 'हुब्ल', 'लात', 'मनात', 'उज्ज़ा' आदि कितनी ही देव-प्रतिमाओं का नाम .कुरान में भी आया है। 'कल्ब', 'हम्दान', 'मज़्हाज', 'मुरद' और 'हमयान' जातियों के क्रमशः नराकृति 'वद्द' स्त्र्याकृति 'सुवाअ' सिंहाकृति 'यग़ूस', अश्वाकृति 'यऊक़' और श्येनाकृति 'नस्र' इष्ट थे। 'काबा' की प्रधान देव-प्रतिमा 'हुब्ल' को (अकाल के समय वर्षा करती है—सुनकर) 'अम्रू' ने सिरिया के 'बल्का' नगर से लाकर काबा में स्थापित किया। उस समय के अरब-निवासियों में इन मूर्तियों का बड़ा प्रभाव था। इनके नाम से बहुत से चमत्कार प्रचलित थे। जिनपर जन-साधारण अत्यन्त विश्वास करता था। जिस समय मक्का-विजय होने पर महात्मा मुहम्मद ने मुसल्मानों को काबा की मूर्तियों को तोड़ने को कहा तो, किसी की हिम्मत न पड़ी; इस पर अली ने स्वयं इस काम को किया।

मूर्तिपूजा से श्रद्धा हटाने के लिये अनेक वाक्य .कुरान में आये हैं। इन वाक्यों का प्रभाव इतना पड़ा, कि हज़ारों मनुष्यों

ने मूर्तिपूजा छोड़ इस्लाम-धर्म स्वीकार किया। मक्का-विजय के समय बहुत से प्रधान-प्रधान लोग भी मुसलमान हो गये। नीचे 'कुरान' के कुछ वह वाक्य दिये जाते हैं, जो मूर्तिपूजा की निन्दा करते हैं—

(१) "जब (कोई) शुभ (फल) प्राप्त हुआ, तो उन्होंने (मूर्तिपूजकों ने) उसमें (मूर्तियों को) साझी बनाया। किन्तु परमेश्वर उनसे, जिनको कि उन्होंने साझी बनाया, बड़ा है। क्या उन (मूर्तियों) को (परमेश्वर का) साझी बनाते हैं, जो स्वयं उत्पन्न है और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकतीं; न अपनी सहायता कर सकती हैं, न अपने भक्तों की।....क्या उन (मूर्तियों) के पैर हैं जिनसे चलती हैं, या उनके हाथ हैं जिनसे पकड़ती हैं, या आँख हैं जिनसे देखती हैं, अथवा कान हैं जिनसे सुनती हैं।... (७ : २४ : २–२६)

(२) "पूछ (हे मुहम्मद !) कोई है तुम्हारे (इष्ट ईश्वर के) साझियों में, जो सृष्टि को पहिले बनावे फिर उसे दुहरावै ? कह–परमेश्वर सृष्टि को उत्पन्न करता है, पुनः दुहराता है, फिर क्यों इन्कार करते हो ? पूछ—कौन तुम्हारे साझियों में सत्य की आज्ञा देता है। कह—परमेश्वर सच्ची शिक्षा देता है। फिर जो कोई सच्ची राह बतावे वह बड़ा है या वह जो आप न शिक्षा दे किन्तु स्वयं आज्ञा किया जावे। तुम लोगों को क्या हुआ है ? कैसा न्याय करते हो ? अटकल छोड़ दूसरे का अनुसरण नहीं करते, किन्तु सच्ची बात में अटकल, (लगाना) लाभदायक नहीं। जो कुछ करते हो परमेश्वर सचमुच उसे जानता है।" (१०: ४ :४-६)

(३) "उस (परमात्मा) के अतिरिक्त दूसरे को मत पूजो। तुमने और तुम्हारे बाप-दादों ने (हुब्ल आदि मनमाना) नाम रख लिये हैं। परमेश्वर ने उसके लिये कोई प्रमाण नहीं भेजा। (संसार में) परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य का शासन नहीं। वह

आज्ञा देता है कि उसे छोड़ कर अन्य को मत पूजो। यह सरल मार्ग है, किन्तु कितने ही मनुष्य इसे नहीं जानते।" (१२-५:४,५)

(४) "परमात्मा के सिवाय, जिनको वह पुकारते हैं, वह कुछ नहीं उत्पन्न करते और स्वयं उत्पन्न हैं।" (१६:३:११)

(५) "परमेश्वर ने कहा—मत ग्रहण करो दो इष्ट, निस्संदेह वह (परमात्मा) एक है। सो मुझ (परमेश्वर) से डरो।" (१६:७:१)

(६) "जब (इब्राहीम ने) अपने बाप से कहा—मेरे पिता! क्यों उसकी उपासना करते हो, जो न सुनता है न देखता और न तुम्हारे कुछ काम आता है।" (१९:३:२)

(७) "जब (इब्राहीम ने) अपने बाप और जातिवालों को कहा—यह मूर्तियाँ क्या हैं, जिनके भरोसे तुम बैठे हो। बोले—हमने अपने बाप-दादों को उन्हें पूजते पाया। कहा—निस्सन्देह तुम और तुम्हारे बाप-दादा नितान्त भ्रम में थे। बोले—तू हमारे पास सच्ची बात लाया है या मिथ्यावादी है? बोला—तुम्हारा परमेश्वर भूमि और आकाश का स्वामी है, जिसने उन्हें बनाया, और मैं इस (बात) का विश्वासी हूँ। ईश्वर की शपथ, जब तुम पीठ फेर चले जाओगे, तब मैं तुम्हारे इष्टों की मरम्मत करूँगा। फिर (इब्राहीम ने) सबसे बड़ी एक मूर्ति को छोड़कर, सबको खण्ड-खण्ड कर डाला...। वह (आपस में) पूछने लगे—हमारे इष्टों के साथ किसने ऐसा किया, (जिसने ऐसा किया) अवश्य वह अधर्मी है। (उनमें से कोई-कोई) बोले—हमने एक जवान को उनसे कुछ कहते सुना है। बोले—उसे लोगों के सामने लाओ कि देखें। पूछे—हे इब्राहीम! क्या हमारे ईश्वर के साथ तूने यह किया है? बोला—हाँ उनमें से बड़े ने ऐसा किया है, सो अगर वह बोलते हैं तो उनसे पूछ लो। फिर (वे) अपने मन में सोचने लगे और बोले—(हे भाइयो) अवश्य तुम लोग

अन्यायी थे।...पूछा—क्या तुम उसकी उपासना करते हो, जो, न तुम्हारा कुछ लाभ कर सकता है न हानि? मैं तुमसे और उनसे—जिन्हें भगवान् को छोड़कर तुम पूजते हो—परेशान हूँ। क्या तुमको ज्ञान नहीं?" (२१ : ६ : २–१७ और २६ : ५ : १—)

(८) "परमेश्वर को छोड़ जिन्हें तुम स्मरण करते हो, मुझे दिखाओ तो पृथ्वी में उन्होंने क्या बनाया?" (४६:१:४)

काबा की मूर्तियों के तोड़े जाते समय हज़रत मुहम्मद जिस वाक्य को अनेक बार उच्चारण करते रहे वह यह है—

"जाअ-ल् हक्क़, व ज़हक़ल्बातिलु, इन्नल्बातिलु कान ज़हूक़।"

'सत्य आया, झूठ भाग गया, निस्सन्देह झूठ भगोड़ा है।' (१ : ६ : ५)

नवम विन्दु

आचार-विचार, दण्डनीति

आठवें विन्दु में .कुरान के धर्मानुष्ठानों का वर्णन किया जा चुका है। यहाँ उसके आचार विषयक उपदेशों का संग्रह किया जायगा। वाह्य आचारों में भक्ष्याभक्ष्य विचार प्रथम आता है। प्राय: सारे ही धर्म इस भक्ष्य (हलाल) अभक्ष्य (हराम) विषय पर कुछ व्यवस्था देते हैं। स्मृतियाँ कहती हैं—'पंच पंच नखा भक्ष्या'। यहूदी धर्म कहता है—'तुम कभी रक्त न पीना।' (Lebi ७ : २६)

"चिरे खुरवाले तथा जुगाली करनेवाले पशु भक्ष्य हैं। (" ११ : ३)"

"पर और छिलकेवाले जलचर भक्ष्य हैं।" (११ : ६)

"स्वयं मरे या किसी जन्तु द्वारा फाड़े प्राणी अभक्ष्य हैं।" (" १७ : १५)

जिस प्रकार .कुरान में बलि के योग्य पशुओं का वही लक्षण स्वीकार किया है जो यहूदी ग्रन्थों में है, वैसे ही भक्ष्याभक्ष्य विषयक नियमों को भी उनसे ही लिया गया है, बल्कि इस बात को निम्न वाक्य द्वारा '.कुरान' स्वीकार भी करता है—

"किताबवालों (यहूदियों) के लिये मेध्य और भक्ष्य तुम्हारे लिये भक्ष्य हुआ और तुम्हारा उनके लिये।" (५ : १ : ४)

"यहूदियों पर जो कुछ हमने अभक्ष्य ठहराया था, उसे हम बतला चुके।" (१६ : १५ : ८)

भक्ष्याभक्ष्य

यहाँ भक्ष्याभक्ष्य के विषय में एक 'आयत' उद्धृत की जाती है, जिसका भाव क़ुरान में अनेक स्थलों पर दुहराया गया है।

'मुर्दार, ख़ून, शूकर-माँस, जिसके ऊपर भगवान् को छोड़-कर दूसरे (किसी देवता, प्रतिमा आदि) का नाम पढ़ा गया हो वह, तथा दम घुटने से, चोट से, सींग मारने से मरे, और जिसे अन्य किसी मांसाहारी प्राणी ने खाया हो—यह सब तुम्हारे लिये अभक्ष्य हैं। किसी स्थान (के नाम पर) बलि चढ़ाना या पासा डालना पाप है।' (५ : १ : ३)

"क़ुरान ने तुम्हारे लिये चौपाये बनाये, जिनमें से खाते हो।" (१६ : १ : ५) इस वाक्य द्वारा माँस-भक्षण के विषय में अपनी स्पष्ट राय दे दी है। किन्तु 'इह्राम' के चार महीनों में शिकार खेलना भी मना किया गया है। (५ : १३ : २)

चोरी और हत्या के विषय में कहा है—

'हे मुसल्मानों ! दूसरे का माल जिस पर (तुम्हारा) हक़ नहीं, मत खाओ; सिवाय इसके कि प्रसन्नतापूर्वक आपस में सौदा हो गया हो। आपस में हत्या मत करो, निस्सन्देह भगवान् तुम पर दयावान् है।' (४ : ५ : ४)

मद्यपान

मद्यपान—अरब में उस समय इसका अत्यन्त प्रचार था। 'क़ुरान' ने कहा है—

'हे मुसल्मानों ! जब तुम नशा में हो, नमाज़ में मत उपस्थित हो, जब तक कि जो कुछ तुम कहते हो उसे समझने न लगो।' (४ : ७ : १)

आठवें विन्दु में कहा गया है कि प्रत्येक मुसल्मान का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि नमाज़ में जाय, यदि वह स्वस्थ है। किन्तु नशा में वहाँ अनुपस्थित होने से पाप का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रीति से क़ुरान ने मद्यपान का निषेध किया। तो भी आयत (२ : २७ : ३) में उसने जुआ और मद्यपान को महापाप कहा है।

शरीर-स्वच्छता के विषय में, पहिले कहा जा चुका है। क़ुरान न घर छोड़ संन्यासी होने का विधान ही करता है न निषेध। किन्तु ईसाइयों की प्रशंसा के समय उनके साधुओं का नाम जैसा प्रतिष्ठापूर्वक लिया गया है, उससे मालूम होता है कि विद्वान् सदाचारी साधु का होना क़ुरान से विरुद्ध नहीं।

न्याय व्यवस्था

सच्चे मुसल्मान के लिये क़ुरान कहता है—

"जो अपनी स्त्रियों और अपने दहिने हाथ की सम्पत्ति (दासियों) को छोड़कर (अन्यत्र) अपनी काम-चेष्ठा को रोकते हैं।" (७० : १ : २६, ३०)।

दासी या लौंडी को इस्लाम ने एक प्रकार की पत्नी ही माना है। स्त्री-प्रसंग के विषय में कहा है—

"रजःस्वला होने के समय में तुम स्त्रियों से दूर रहो और उनके पास तब तक न जाओ, जब तक वह शुद्ध न हो जायँ।" (२ : २८ : १)

(३ : १४ : १) वाक्य में क़ुरान ने सूद लेने का निषेध किया है।

उस समय अरब की राजनैतिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। देश भर में अव्यवस्था फैली हुई थी। शासन और सुव्य-वस्था का नाम नहीं था। जब शान्ति-प्रिय महात्मा मुहम्मद ने

शान्ति-व्यवस्था का प्रयत्न आरम्भ किया, तो उन्हें न्याय-विषयक नियमों और व्यवस्थाओं की आवश्यकता जान पड़ी। ऐसी व्यवस्थाएँ स्थान-स्थान पर 'क़ुरान' में पाई जाती हैं। उस समय लेनदेन का कोई कागज़ नहीं होता था, जिससे न्यायाधिकारियों को कठिनाई पड़ती थी, अतः क़ुरान ने (२ : ३६ : १) दस्तावेज़ लिखने का परामर्श दिया।

दाय भाग

बहुत से धर्मों में स्त्रियाँ दाय-भाग की अधिकारिणी नहीं समझी जातीं, इस्लाम ने उनको जहाँ अरब के उस व्यवहार से, जिसमें उन्हें दासी या विलास-सामग्री से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था, निकाला; वहाँ उन्हें दाय-भाग की भी अधिकारिणी बनाया। यद्यपि उनका यह अधिकार पुरुष के बराबर नहीं है, तो भी उस समय की अपेक्षा यही बहुत है। क़ुरान में कहा है—

'माता-पिता या सम्बन्धी, जो कुछ थोड़ा बहुत छोड़कर मरते हैं, उसमें स्त्री-पुरुष दोनों का भाग है। परमेश्वर कहता है—तुम्हारी सन्तान में पुरुष का भाग दो स्त्री के भाग के बराबर है। यदि केवल स्त्रियें ही दो से अधिक हुईं, तो दो-तिहाई उनका दाय-भाग होता है। यदि एक है तो आधा। मृत पुरुष के सन्तान होने पर माता-पिता में से प्रत्येक का छठाँ भाग। यदि मृत पुरुष निस्सन्तान है, और उसके दायभागी उसके माता-पिता हैं; तो माता-पिता को एक तिहाई। यदि कई भाई हैं, तो माँ का छठाँ भाग है, किन्तु यह उसके बाद, जो कुछ कि मृतपुरुष ने अपनी वसीयत में दिलवा दिया या क़र्ज़ में पटा।' (४ : २ : १)।

"यदि वह निस्सन्तान हो, तो तुम अपनी मृतपत्नियों के आधे के दायभागी हो, किन्तु ससन्तान होने पर चतुर्थ भाग ही तुम्हारा अंश है। यह भी ऋण पटाने और वसीयत पूरा करने के

बाद, निस्सन्तान मृत-पुरुष के चौथाई और ससन्तान के अष्टमांश की अधिकारिणी उसकी स्त्रियाँ हैं। यह भी ऋण पट जाने और वसीयत पूरा हो जाने के बाद।" (४ : २ १)

"कलाला" (पितृ-पुत्र-हीनता) में—

"जिन स्त्री-पुरुषों के पिता-पुत्र आदि दायभागी नहीं हैं, भाई या बहिन हैं, तो दो में से प्रत्येक को छठाँ भाग और यदि अधिक हैं, तो सब एक तिहाई में साझीदार हैं। यह भी ऋण पट जाने और न हानिकर वसीयत पूरा हो जाने पर।" (४ : २ : २)

इसी के विषय में अन्यत्र भी कहा है—

"यदि कोई पुरुष सन्तानरहित मर गया, और उसकी बहिन है, तो उसको उसकी सम्पत्ति का तृतीयांश है, इसी प्रकार भाई सन्तानहीन बहिन का दायभागी है। यदि दो बहिनें हुईं, तो उनके लिये सम्पत्ति का दो तिहाई। स्त्री-पुरुष बन्धु लोग जो उत्तराधिकारी हों, उनमें पुरुष का भाग स्त्री से दूना होता है।" (४ : २४ : ५)

दण्ड

यदि उत्तराधिकारी बालक है, तो उसके अभिभावकों के लिये कहा गया है—

'जब तक 'बालिग़' नहीं हुए, तब तक उनको सुधारते रहो। जब उनमें चतुरता देखो, तो उनको उनकी सम्पत्ति दे दो। व्यर्थ व्यय में उसमें से खा न जाओ, इस ख्याल से कि कहीं वे वयस्क न हो जायँ। यदि (अभिभावक) धनहीन हैं, तो वह उसमें से उचित खायँ, किन्तु जो सम्पन्न हैं, उन्हें, (इससे) बचना चाहिये। जब उनकी सम्पत्ति लौटाने लगो, तो गवाह बनाओ।' (४ : १ : ६)।

यही नहीं आगे कहा है—

"जो अनाथों की सम्पत्ति अन्याय से खाते हैं, वह पेट में आग खाते हैं, और अब (नर्क की) आग में डाले जायँगे।" (४ : १ : १०)

'क़ुरान' ने अपराधों के अत्यंत कठोर दण्ड निश्चित किये हैं यह ख्याल करके कि दण्डों की भयंकरता अपराधी की संख्या कम करती है। हाँ! मनुष्य के सर्वज्ञ न होने से कहा जा सकता है, कि कितने ही समय निरपराधी भी न्यायप्रिय न्यायाधीश के हाथ से दण्ड पा जाते हैं।

१—चोरी का दण्ड।

"जो पुरुष या स्त्री चोरी करे, उनके हाथ काट डालो, यही उनके काम का फल है।" (५ : ६ : ४)

'तौरेत' (Leviticus $\frac{24}{19-21}$) में मनुष्य-हत्या करनेवाले का अंग के बदले अंग और प्राण के बदले प्राण लेने का विधान है, क़ुरान भी वैसे ही कहता है—

'प्राण के बदले प्राण, आँख के बदले आँख, कान के बदले कान, नाक के बदले नाक, दाँत के बदले दाँत और घाव के बराबर का बदला। फिर यदि (मार खानेवाले ने) क्षमा कर दिया, तो उसकी छुट्टी है। (५ : ७ : २)।

व्यभिचार दण्ड—

२—व्यभिचार के लिये क़ुरान ने मनुजी से हल्का ही दण्ड दिया है—

'परमेश्वर की व्यवस्था में उन (व्यभिचारी, व्यभिचारिणी) दोनों पर तुम दया मत करो। व्यभिचारी और व्यभिचारिणियों में से प्रत्येक को सौ (१००) बेंत मारो। और उनकी यातना विश्वासी लोग देखें।' (२४ : १ २)

किन्तु दासियों को इसी अपराध में उसका आधा दण्ड मिलना चाहिये। (४ : ४ : ३)।

सदाचार

क़ुरान के अनुसार कृपणता भी एक अपराध है, एक जगह कहा है—

"जो कृपणता करते हैं और दूसरे को भी वैसा करने के लिये सिखाते हैं; जो कुछ भगवान् ने अपनी कृपा से दिया उसे छिपा रखते हैं, ऐसे नास्तिकों के लिये महा यातना तैयार की गई है।" (४ : ६ : ४)

किन्तु साथ ही अपव्ययता के बारे में भी कहा है—

'अल्लाहु ला यहिब्बुल्मुस्रिफ़ीन्' (७ : ३ : ६)

(भगवान् फ़जूल-खर्चों पर ख़ुश नहीं रहता)।

विस्तार-भय से अधिक न लिखकर दो तीन और क़ुरान के आचार-संबन्धी उपदेश उद्धृत किये जाते हैं—

(१) "शुभ कर्म कर और क्षमा मान ले, अज्ञानियों से उपेक्षा कर।" (७ : २४ : ११)

(२) "जो अपने ऊपर किये गये अन्याय का बदला लेवे, उसके लिये कुछ कहना नहीं। कहना तो उन पर है, जो लोगों पर अन्याय करते हैं, और दुनिया में व्यर्थ (धर्मात्मा होने) की धूम मचाते हैं। उन्हीं के लिये घोर यातना है। जो क्षमा और सन्तोष करे तो (उसका) यह (काम) निस्सन्देह अत्यन्त साहस का है।" (५२ : ४ : १२-१४)

(३) 'तुम्हारी सन्तान······हमारे (ईश्वर के) समीप तुम्हें दर्जा नहीं दिला सकती, हाँ! जो श्रद्धालु और अच्छा काम करनेवाला है, उसके लिये दूना फल है।' (३४ : ५ : १।)

दशम विन्दु

क़ुरान और स्त्री जाति

स्वयं अलौकिक होते हुए भी लौकिक उन्नति का कोई भाग नहीं है जिसमें इस्लाम का हाथ दिखलाई न पड़ता हो। प्राचीन जातियों की धर्म-प्रियता तो प्रसिद्ध ही है। आजकल की जातियों के बारे में कहा जाता है कि, उनकी उन्नति में उनके धर्म का प्रभाव है। धार्मिक विचार यद्यपि अनुद्भूत रूप में व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है, किन्तु वस्तुत: वही धर्म बाहरी व्यवहार में भी प्रविष्ट हो जाता है। बाहर से देखने पर यद्यपि धर्म का आधार-भूत वह छिपा अस्थिपंजर दीख नहीं पड़ता; किन्तु कौन कह सकता है कि वहाँ उसका अस्तित्व नहीं। मनुष्य शनै: शनै: उनमें इतना परपक्क हो जाता है कि, उसके लिये उन विचारों के परित्याग से अपना सर्वस्व परित्याग करना सुलभ हो जाता है। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। आशात्मक धर्म स्वर्ग की ओर मनुष्य को अग्रसर करता है, और निराशात्मक पाताल के लिये। जिस प्रकार धर्म व्यक्तिगत है उसी प्रकार अनेक व्यक्तियों का धर्म एकत्रित हो समष्टिगत भी हो जाता है। यही कारण है कि इसका प्रभाव व्यक्ति की आत्मा से लेकर जाति की आत्मा तक रहता है।

समाज और स्त्रियाँ

'क़ुरान' एक धर्म का प्रचार करता है, जिसका प्रभाव अनेक व्यक्तियों पर होना आवश्यक है। उसकी शिक्षाओं या धर्म का

प्रभाव जातियों और उसके व्यक्तियों पर क्या पड़ा, यह इस निबन्ध में आनेवाली बात नहीं। प्रत्येक जाति के स्त्री, पुरुष दो अंग हैं। अपने इन दोनों रथवाहों या चक्कों के भरोसे ही कोई भी जाति संसार में उन्नति के पथ पर सरपट भाग सकती है। यंत्र में उसके टुकड़ों का यथास्थान विन्यास जैसे उसे सजीव-सा कर देता है, उसी प्रकार समाज को भी यदि इन दोनों अंगों का यथास्थान विनियोग हुआ है। .कुरान की शिक्षा एक विशेष काल को लेकर प्रवृत्त हुई है। उसको एक विशेष परिस्थिति में बनकर, जमना, बढ़ना और फलना-फूलना पड़ा है। अतः यह अन्याय होगा, यदि हम उस समय की अवस्था को बिना दिखाये ही इसका वर्णन आरम्भ कर दें। .कुरान में स्त्रियों को जो स्थान प्रदान किया गया है उसकी महत्ता हमें उस समय की स्थिति पर विचार करने ही से मालूम होगी।

स्त्रियों पर अत्याचार न करो

.कुरान' का निम्न वाक्य तत्कालीन स्त्री-समाज की अवस्था और इस्लाम के उस पर के उपकार को प्रकट करता है—

"हे विश्वासियो! (मुसल्मानों!) यह न्याय नहीं कि तुम बलपूर्वक, स्त्रियों को दाय-भाग में लो, या जब तक उनका दुराचार साफ़ न मालूम हो जाय, तब तक अपना दिया ले लेने के लिये उन्हें बन्द कर रखो। स्त्रियों के साथ न्यायानुमोदित व्यवहार करो। फिर यदि तुम्हें वह प्रिय न हों, तो इसके लिये (क्या) हो सकता है—कोई वस्तु तुम्हें अच्छी न प्रतीत हो, जिसमें कि परमेश्वर ने वहुत-सो भलाई दे रक्खी है।" (४ : ३ : ५)

उस समय 'अरब' में रवाज था, कि पुरुष स्त्री को जब अपने पास नहीं रखना चाहता; तो उस पर दोषारोपणकर उसे स्त्री-धन

से भी वञ्चित करके निकाल देता था। इसके रोकने के लिये 'क़ुरान' ने कहा—

"यदि तुम एक स्त्री के स्थान पर दूसरी स्त्री बदलना चाहते हो, और उसको धन दे चुके हो; और उसमें से कुछ न लौटाओ। (ऐसा करके) क्या साफ़ अपराध और अपयश लेना चाहते हो?" (४ : ३ : ६)

ब्याह के योग्य स्त्रियाँ

सचमुच 'अरब'-निवासी स्थावर, जंगम अन्य सम्पत्तियों की भाँति स्त्रियों को भी जंगम संपत्ति-सी समझते थे। इसके विरोध में, एवं विवाह को व्यवस्थित करने के लिये उपदेश है—

"तुम्हारे बाप ने जिनसे ब्याह किया, उनसे तुम मत ब्याह करो। पहिले जैसा हो गया सो हो गया, निश्चय ही वह लज्जास्पद बात थी।" (४ : ४ : १)

किन-किन से ब्याह न करना चाहिये इसे आगे और स्पष्ट कहा है—

"तुम्हारी माता, बेटी, बहिन, फूफी-मौसी-भाई की बेटी, बहिन की बेटी, दूध पिलानेवाली माँ, दूध की बहिन, सास, तुम्हारे द्वारा पोसी तुम्हारी स्त्रियों की बेटियाँ , बेटों की बहुएँ, दो बहिनें एक साथ—यह तुम्हें ब्याह के लिये निषिद्ध हैं।" (४ : ४ : १)

परतंत्रता पापों की माँ है। परतंत्रता की पराकाष्ठा में पहुँचकर स्त्रियाँ स्वयं भी अनेक दुर्व्यसनों में लिप्त हो गई थीं, जिनसे निकालने के लिये उपदेश है—

"ईश्वर को साक्षी न बनावें, चोरी न करें, व्यभिचार न करें, संतान न मारें, झूठ-सच न करें।····इत्यादि बातों की सपथ लेने

आवें, तो हे नबी! परमात्मा से तू उनके वास्ते क्षमा माँग, निस्सन्देह प्रभु क्षमाशील है।" (६० : २ : ६)।

विवाह की संख्या

'क़ुरान' यद्यपि बहुविवाह का प्रतिपादन करता है। किंतु उसमें उसने चार तक की सीमा रक्खी है, जो उस समय के अनगिनत पत्नी रखनेवाले अरबवालों पर बलात्कार-सा था। क़ुरान ने कहा है—

"तो यथेच्छ ब्याह करो दो-दो, तीन-तीन, चार-चार, पुनः यदि भय हो कि इंसाफ़ नहीं कर सकोगे, तो एक ही" (४ : १ : ३)

यहाँ पर यह शर्त रक्खी है, कि यदि तुम सबके साथ न्यायपूर्वक बर्त सको तब। किंतु यह स्पष्ट है कि बहुत-सा स्त्रियों से ब्याह करके कितने लाग न्यायपूर्वक बर्तनेवाले हैं? रही बिल्ली के भाग से छींका टूटनेवाली कहावत की तरह, अपने मतलब की बात ढूँढ़कर बहुत से ब्याह करने के लिये तय्यार हो जानेवाली बात, उनके लिये तो वस्तुतः यहाँ कोई अवकाश नहीं। क़ुरान ने उस समय की परिस्थिति देखकर, चार तक की सीमा करके उसके साथ यह भी शर्त लगा दी। यह तो विलासप्रिय धनिकों का काम हुआ, जिन्होंने टट्टी के आड़ में शिकार खेलना आरंभ कर दिया। भला! बहुत से नवाबों के बाड़ों के विषय में कहाँ क़ुरान ने आज्ञा दी है।

ऐसी स्वेच्छाचारिता सब धर्मों के अनुयायियों में देखी जाती है। गृहस्थाश्रम या विवाह सम्बन्धी सभी वेदमंत्रों में पति पत्नी के लिये द्विवचन 'दंपती', 'जंपती', 'जायापती' आदि शब्द आते हैं, किंतु क्या अपने को वेदों के अनुयायी कहनेवाले बहु-पत्नीववाह से सर्वथा बाज आये?

इस्लाम में स्त्रियों के संबंध की एक और बात खटकती है; वह है पर्दे की जकड़बंदी। इसके द्वारा स्त्रियाँ घोर एकान्त क़ैद में डाल दी जाती हैं, वह कूप-मंडूक बना दी जाती हैं। इस पर और विचार करने से पूर्व हम मूल उस वाक्य को रख देना चाहते हैं, जिसमें पर्दे का वर्णन है—

"हे नबी! अपनी स्त्रियों, बेटियों, और मुसल्मान स्त्रियों से कह दे, कि अपनी चादरें थोड़ा-सी ऊपर लटका लें, यह इसलिये कि पहिचानी जावें. (और) फिर कोई न सतावे।" (३३ : ८ : १)

"मुसल्मान स्त्रियों से कह दे, कि दृष्टि नीची रखें, अपने गोप्य स्थानों को आच्छादित रक्खें, जो (स्वयं) प्रकट है, उसके सिवाय अपने सौंदर्य को न दिखावें। अपने पति, पिता, श्वसुर, पुत्र, पति के पुत्र, भाई, भतीजा, भाञ्जा, अपनी स्त्रियाँ, दासियाँ, आश्रिताएँ, न संबंध रखनेवाले पुरुष, या बालक—जो स्त्री-भेद नहीं जानते; इन (सबके) सामने के अतिरिक्त अपनी ओढ़नी से सीना ढाँक लें, और अपने सौंदर्य को न खोलें, पैर धमकाती न चलें, जिसमें कि छिपा (जेवर आदि) जान पड़े।" (२४ : ४ : ५)

पर्दा

पहिले वाक्य में तो चादर ढाँकने का अभिप्राय मुसल्मान जानी जाने, तथा न सताई जाने के लिये कहा गया है। दूसरे वाक्य में भी सौंदर्य को दिखाने से रोकने का अभिप्राय बोरा-बंदी लेना अन्याय है। स्पष्ट अर्थ तो यह है, कि जैसे पाश्चात्य स्त्री-समाज में सौंदर्य दिखलावे का रोग यहाँ तक लग गया है कि जाड़े पाले में, आधा वक्षःस्थल नंगा रखती हैं, कहीं वही बात स्त्रियों में न घुसने लगे। दरअसल इस प्रकार की बीमारी स्त्री-पुरुष दोनों समाजों में भी किसी प्रकार आना ठीक नहीं है।

कहावत है, कि शैतान भी अपने मतलब को सिद्ध करने के लिये शास्त्र की दुहाई देता है, उसी प्रकार यह मुसल्मान पतियों का सरासर अन्याय है, जो .कुरान में लिखे पर्दा ही पर संतोष न कर उन्होंने स्त्रियों को सात संगीन पर्दे में बंद कर रक्खा है। .कुरान ने तो विशेष शृङ्गार आदि के न दिखाई देने के लिये कुछ विशेष अंगों को ढाँकने के लिये कहा, किंतु यहाँ लोगों ने सारे बदन को ही ढाँकने पर बस न की, ऊपर से साततालों के अन्दर भी उन्हें बंद करना उचित समझा। यह केवल मुसल्मान पुरुषों ही की बात नहीं, सच कहते हैं 'गुरु तो गुरु ही रह गये चेला चीनी हो गया।' हिंदुओं के पुरुषों ने कभी सुना न होगा कि पर्दा-प्रथा किस चिड़िया का नाम है। आज भी महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र, द्रविड़, मालाबार इत्यादि आधे से अधिक भारतवर्ष के हिंदू पर्दा को नहीं जानते। किंतु जिस प्रकार आज अँग्रेजी राज्य में बहुत से हिंदू अँग्रेजों का खान-पान, रहन-सहन गौरवपूर्ण समझ उनका अनुकरण करते हैं, वैसे ही कुछ तो स्त्रियों की रक्षा के लिये और कुछ गौरव समझ हिंदुओं ने मुसल्मानों की इस रीति को अपनाकर उसमें और तरक़्क़ी की। पहिले पहल इन रीतियों को धनिकों और बड़े आदमी कहे जाने-वाले लोगों ने लिया, पीछे बड़े आदमी बनने की इच्छावाले सभी लोगों ने अपनी स्त्रियों पर इस नये दण्ड-विधान का प्रयोग आरम्भ किया। शरीर में कोमलता की वृद्धि के लिये, राजदाराओं को 'असूर्यपश्या' तो देखा गया है, किन्तु 'अचन्द्रं-पश्या' होने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है।

'इहैवास्तं मा वियौष्टम्' (दोनों यहाँ ही रहो, मत अलग हो) इस विवाह-सम्बन्धी वेदमन्त्र में स्पष्ट विवाहित जोड़े को अलग होने का निषेध किया है। इस प्रकार आर्य (हिन्दू) धर्म विवाह सम्बन्ध को अखंडनीय मानता है। किन्तु कई धर्म विशेष

स्थिति में विवाह-सम्बन्ध-त्याग या 'तिलाक़' की अनुमति देते हैं। कुरान कहता है—

"जो अपनी स्त्रियों से (तिलाक़ की) शपथ खा लेते हैं, उनके लिये चार मास की अवधि है, (इस बीच में) यदि मेल कर लें तो ईश्वर क्षमाशील और कृपालु है। यदि 'तिलाक़' का निश्चय कर लिया, तो भगवान् (उसका) सुननेवाला और जाननेवाला है। 'तिलाक़' दी गई स्त्रियाँ तीन ऋतुकाल तक प्रतीक्षा करें; उनको योग्य नहीं कि जो ईश्वर ने उनके उदर में उत्पन्न किया, उसे छिपा रक्खें...उनके पतियों को भी इतने दिन तक उन्हें फिर ले लेने का अधिकार है, यदि सुधार चाहें। स्त्रियों को भी न्यायानुसार वैसा अधिकार है, (किन्तु) पुरुषों का उन पर दर्जा है।" (२ : २८ : ५—७)।

यद्यपि यहाँ कुछ शर्तों के साथ तिलाक़ की अनुमति दे दी गई है, किन्तु तो भी इसे अच्छा नहीं माना गया है। यह महात्मा मुहम्मद के इस वचन से भी प्रकट होता है—

हलाला और मुतअ़

'मनुष्य के लिये विधान की गई सारी बातों में 'तिलाक़' परमात्मा को अत्यन्त अप्रिय है।'

यही नहीं तिलाक़ दे देने पर भी 'क़ुरान' एक बार फिर स्त्री-पुरुषों को मेल करने का अवसर देता है। इस्लामी परिभाषा से इस रीति को 'हलाला' कहते हैं। क़ुरान ने कहा है—

"यदि उसे तिलाक़ दे दिया, तो उस (पुरुष) को इसके बाद वह स्त्री 'हलाल' (विहित) नहीं; जब तक कि दूसरा पति उससे विवाह न कर ले। फिर उसने यदि 'तिलाक' दे दिया तो उन दोनों पर दोष नहीं, वह अपने पूर्व पति-पत्नी-संबंध पर लौट

जा सकते हैं, यदि समझें कि वह परमात्मा की मर्यादा को निबाह सकेंगे।" (२ : २६-२)।

सामान्य विवाह-सम्बन्ध के अतिरिक्त, 'शिया' सम्प्रदायवाले मुसल्मान एक और सावधिक पति-पत्नी सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, जिसका पारिभाषिक नाम 'मुतअ्' है। यह सम्बन्ध सदा के लिये नहीं होता; बल्कि कुछ खास अवधि मुक़र्रर करके होता है। उसके बाद वह सम्बन्ध स्वयं टूट जाता है।

स्त्री-पुरुष के विषय में क़ुरान ने उपमा देकर कहा है—

"स्त्रियाँ तुम्हारा वस्त्र हैं, और तुम उनके।" (२: २३: ५)

"स्त्रियाँ तुम्हारी कृषि हैं।" (२ : २७ : २)।

स्त्री पुरुष के तथा पुरुष स्त्री के अनेक दोषों को ढाँक सकता है। इसीलिये यहाँ उनको एक दूसरे का वस्त्र कहा। द्वितीय वाक्य में, न केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से ही स्त्री-पुरुष का कृषि कृषक होना उचित है, बल्कि जिस प्रकार कृषि पर कृषक का जीवन अवलम्बित है वैसे ही स्त्री पर पुरुष जगत् का अस्तित्व होना भी इससे ध्वनित होता है।

"पुरुष स्त्रियों पर अधिष्ठाता हैं, इसलिये कि परमात्मा ने किसी को किसी पर बड़ाई दी।" (४ : ६ : १)

यह बात अवश्य स्त्रियों के लिये निराशाजनक है। इसमें पुरुषों का स्त्रियों पर अचल आधिपत्य सिद्ध किया गया है। किन्तु तो भी तत्कालीन स्थिति और इस्लाम द्वारा उनको दिये गये अधिकार, स्त्री-जगत् पर कम उपकार नहीं हैं। उ

जहा तक हो सकता था, उतना किया गया। अब पुरुषों के स्त्रियों पर अधिष्ठातृत्व का निर्णय मुसल्मान स्त्रियों के हाथ में है।

यद्यपि धर्म के नाम पर मुसल्मान पतियों ने अपनी हगृ-लक्ष्मियों पर बहुत अत्याचार किया है, और अब भी वैसा हो

रहा है; किन्तु, इस विन्दु के पढ़ने से ज्ञात होगा, कि उन सबके लिये 'कुरान' या इस्लाम दोषी नहीं। इतिहास साक्षी है कि, महात्मा मुहम्मद की सबसे छोटी उम्र की तथा अत्यन्त सुन्दरी पत्नी श्रीमती 'आयशा' और उनकी सपत्नी श्रीमती 'उम्म-सुलमा' उहद के युद्ध में घायलों को अपने हाथ मे पट्टी बाँधती तथा पानी पिलाती थीं। श्रीमती 'सफ़िया' महात्मा की एक तीसरी पत्नी ने, पुरुषों की अनुपस्थिति में बचे हुये लोगों को शत्रु से बचाने के लिये स्वयं सैनिक का काम किया। यदि उस समय की स्त्रियाँ आजकल की मुसल्मान स्त्रियों-सी होतीं, तो कब उनसे ऐसे काम हो सकते थे। मिश्र, टर्की आदि मुसल्मानी देशों का स्त्री समाज अब जाग उठा है। अभी उस दिन 'अंगोरा' मे एक स्त्री के सम्पूर्ण तुर्क राज्य के शिक्षा-मंत्री होने का समाचार आया है। अभी हाल ही में मिश्र की सहस्रों स्त्रियों ने पर्दा हटा, अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उत्सव मनाया। यह इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं, कि मुसल्मान्-स्त्री-जाति का भी भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

एकादश विन्दु

चमत्कार

अपने-अपने महात्माओं की अलौकिक शक्तियों के प्रमाण-भूत बहुत से 'चमत्कार' या 'मोअजिजा' (Miracle) सभी सम्प्रदायों में मशहूर है। कुरान में भी ऐसे अनेक चमत्कार लिखे मिलते हैं। उनमें से बहुत से तो वही हैं, जो यहूदी और ईसाई धर्मग्रन्थों में वर्णित हैं; और कुछ खास महात्मा मुहम्मद के भी हैं। 'अरब' के लोग ऐसे चमत्कारों के बड़े विश्वासी थे। वह हजरत मुहम्मद से भी उन्हें दिखाने के लिये कहते थे—यदि तू भगवद्दूत (रसूल) है तो क्यों नहीं तेरे साथ देवदूत रहता? क्यों नही अपने लिये मेवों का बाग़ पैदा कर लेता? क्यों नहीं काग़ज़ पर लिखा 'क़ुरान' तेरे पास आता? इसका उत्तर क़ुरान में इस प्रकार है—

"यदि हम (परमेश्वर) तुझ (मुहम्मद) पर काग़ज़ पर लिखा हुआ उतारें, तो हाथ से छूकर कहेंगे—यह जादू छोड़ और कुछ नहीं।" (६ : १ : ७)

मूसा ईसा के चमत्कार

'तौरेत' में वर्णित महात्मा मूसा के चमत्कार—'समुद्र फाड़-कर रास्ता बना देना' (२ : ६ : ४), 'पत्थर पर डंडा पटककर उसमें से बारह सोता निकालना' (७ : २० : ३), हाथ में चम-कीली मुहर (२६ : २ : २४), चमत्कारी डंडा जो ज़मीन में रखने पर साँप हो जाता था (२६ : २ : २३), मारकर सौ वर्ष

तक रख, फिर जिलाना (२ : ३५ : ८), .क़ुरान में भी कोष्ठ में दिये स्थानों में मिलते हैं। महात्मा ईसा के चमत्कारों के विषय में कहा है—

"जब परमात्मा ने कहा—हे मरियम-पुत्र ईसा! तुझपर और तेरी माता पर मेरे उपकार याद कर, जब हमने तुझे 'पवित्रात्मा' द्वारा सहायता दी, तो तू गोद में और बड़ी अवस्था में मनुष्यों से बात करता; और हमने तुझे युक्ति, ईश्वरीय पुस्तक, 'तौरात' और 'इञ्जील' सिखलाई। जब तू मिट्टी से पत्ती की मूरत बनाता और उसमें फूँक मारता, तो वह मेरी आज्ञा से (सजीव) पत्ती हो जाता। तू मेरी आज्ञा से जन्म के अन्धे और कोढ़ियों को चङ्गा करता; मेरे हुक्म से मुर्दे को (जिन्दाकर) बाहर निकालता। जब तू उनके पास प्रमाण के साथ आया, और हमने इस्राईल-सन्तान को तुझसे रोका, तो उनमें से नास्तिक कहने लगे कि यह खुला जादू है।" (५ : १५ : २)

महात्मा मुहम्मद के चमत्कार

महात्मा मुहम्मद ने यद्यपि चमत्कार दिखलाने में अधिकतर अपनी असम्मति ही प्रकट की है; किन्तु तो भी .क़ुरान के कुछ वाक्य उनके कुछ चमत्कारों को प्रकट करते हैं। नीचे उन्हें संक्षेप से दिया जाता है—

(१) "जब फेंका, तो तूने नहीं फेंका, किन्तु परमात्मा ने फेंका।" (२ : २ : ६)

हज़रत ने 'बद्र' के युद्ध के समय एक मुट्ठी मिट्टी शत्रुओं की ओर फेंकी थी, पीछे शत्रु की पराजय हुई। यहाँ उसी बात का संकेत है।

(२) "प्रभु ने अपने 'नबी' और मुसल्मानों के पास शान्ति और सेना भेजी जिसको तुमने नहीं देखा।" (६ : ४ : २)

यहाँ एक लड़ाई में ईश्वर ने 'फिरिश्तों' की सेना भेजकर महात्मा की मदद की—इसकी ओर संकेत है।

(३) "वह (ईश्वर) पवित्र है, जो अपने दास (मुहम्मद) को रात में पवित्र मस्जिद (क़ाबा) से अन्तिम-मस्जिद (स्वर्ग) जो चारों ओर पवित्र ऐश्वर्य से पूर्ण है—को ले गया, कि उसको अपने प्रमाण दिखावे।" (१७ : १ : १)

"और उसको दूसरे उतार में, अन्तिम बेर (वृक्ष) के पास दिखाया, उसके पास वासोद्यान (स्वग) है। .... निस्सन्देह उस (मुहम्मद) ने अपने प्रभु के सबसे बड़े प्रमाण देखे।" (५३ : १ : १३—१५, १८)

यहाँ महात्मा मुहम्मद की सजीव स्वर्गयात्रा का वर्णन है, जिसे 'मिअ्राज' कहते हैं। ईश्वर ने उन्हें स्वर्ग में ले जाकर अपने ऐश्वर्य दिखलाये।

(४) "जब हमने जिन्नों* में से कितने को तेरी ओर आकृष्ट किया। जिन्होंने 'कुरान' सुना, और जब वह वहाँ आये, तो (आपस में) बोले—चुप रहो। फिर जब (पढ़ना) समाप्त हुआ, तो अपनी जाति की ओर (ईश्वर का) भय सुनानेवाले होकर लौट गये।" (४६ : ४ : ३)

'जिन्न' अग्नि से उत्पन्न एक देवयोनि है। यहाँ बताया गया है कि उनमें से कितने ही महात्मा से 'क़ुरान' सुनकर मुसल्मान हो गये थे, और वे अपनी जाति में भी जाकर इसका प्रचार करने लगे।

(५) "वह घड़ी समीप आई, जब चन्द्रमा खंडित हो गया।" (५४ : १ : १)

यह महात्मा के सबसे प्रसिद्ध 'शक़्क़ुलक़म्र' नामक चमत्कार का वर्णन है। महात्मा ने अपनी दैवी शक्ति दिखाने के लिये एक

*एक प्रकार के देवता।

बार अँगुली चन्द्रमा की ओर की, इस पर उसके दो टुकड़े हो गये, जिसको कितने ही उनके अनुयायियों ने अपनी आँखों से देखा, यही इसका सारांश है।

'कुरान' में एक-ईश्वर-विश्वास पर बहुत बल दिया गया है। एक दो नहीं सैकड़ों बार कहा गया है, कि वह परमेश्वर एक ही है, उसके सिवा दूसरा कोई पूज्य नहीं। यहाँ ईश्वर को सर्व-व्यापक और सर्वज्ञ माना गया है। अवतारवाद का महात्मा ईसा के वर्णन के समय बड़े जोर से खण्डन किया गया है। क़ुरान ने खुले शब्दों में कहा है कि परमात्मा तुमको पूर्वजों के मार्ग पर चलाना चाहता है। (४ : ४ : १)

म० मुहम्मद ने किसी नये धर्म की नींव रखने का दावा नहीं किया किन्तु उसी 'दीन-इब्राहीम' या 'इब्राहीम' के पन्थ का पुनः प्रचार करता है, जो महात्मा मुहम्मद से हजारों वर्ष पूर्व विद्यमान था।

महात्मा मुहम्मद उन विशेष व्यक्तियों में से थे, जिनका स्थान अपने आसपास के धरातल से ऊँचा होता है। जिस प्रकार प्रकृति कहीं-कहीं नीचे खड्डों के पास उत्तुंग पर्वत उत्पन्न कर देती है, वैसे ही अपनी जन्मभूमि में ऐसी महान् आत्माओं की स्थिति है। यद्यपि 'मोमिन्' और 'मुस्लिम' शब्दों के अर्थ 'सत्य-प्रिय' और 'शान्ति प्रिय' हैं, तो भी अनेक स्थानों पर इनका बड़ा संकुचित अर्थ लिया गया, और इसी भ्रान्ति के कारण संसार के इतिहास में इस्लाम के नाम पर अनेक अनुचित कार्य हुए हैं। विद्वानों ने इस बात को माना है, कि महात्मा ने लाचार होकर आत्म-रक्षा के लिये शस्त्र ग्रहण किया था; किन्तु, पीछे कितने ही लोगों ने उसका उल्टा अर्थ लगाया। उन्होंने युद्ध को धर्म फैलाने का साधन मान लिया। वास्तव में महात्मा मुहम्मद शान्त-

प्रकृति के थे, उन्होंने बिना आवश्यकता के कभी रक्त बहाना अच्छा नहीं समझा।

"अल्लाहु ला-मुहिब्बुल्फ़साद्।" (२ : २५ : १)

(ईश्वर कलह नहीं पसन्द करता)

यह वाक्य भी उक्त अर्थ को स्पष्ट प्रतिपादित करता है

'लकुम् दीन-कुम् व ली दीनी'।

'तुम्हारे लिये तुम्हारा धर्म और मेरे लिये मेरा धर्म'—इस वाक्य ने भी धार्मिक सहिष्णुता का अच्छा पाठ पढ़ाया है। 'इस्लाम' को समझने के लिये हमें उपरोक्त क़ुरान के वाक्यों पर विचार करना चाहिये। कतिपय मुसल्मानों के आचरण से 'इस्लाम' पर फ़ैसला देना अन्याय है।

महात्मा मुहम्मद शान्तिप्रिय थे, ईश्वर-भक्त थे, उनमें और बहुत से सद्गुण थे; यों तो मनुष्य होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता, कि वह सर्वथा निर्दोष थे। उन्होंने मनुष्य-जाति पर बड़ा उपकार किया। अगणित आत्माओं को उनके प्रकाश ने मार्ग दिखलाया। अगणित प्राणियों ने उनके उपदेश से शान्ति पाई। मैंने इस छोटे से निबन्ध में क़ुरान का सार निचोड़ने का प्रयत्न किया है। यथार्थ 'इस्लाम' धर्म भी वही है जिसे 'क़ुरान' के अपने शब्द प्रतिपादित करते हैं।